ब्रह्माण्ड और सौर-परिवार

डॉ. देवीप्रसाद त्रिपाठी

प्रवाचक, ज्योतिष-विभाग

श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ (मानित विश्वविद्यालय)

नई दिल्ली-110016

परिक्रमा प्रकाशन

दिल्ली

प्रकाशक : परिक्रमा प्रकाशन
1/13, पूर्वी गोकलपुर,
शाहदरा, दिल्ली-110 094

ISBN : 81-8021-011-1

संस्करण : 2006

मूल्य : 150.00 रुपए

मुद्रक : त्रिवेणी ऑफसेट,
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110 032

भूमिका

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्त संज्ञके।।

यह सम्पूर्ण दृश्यवत् जगत सृष्टि के उषः काल में अव्यक्त से प्रकट होता है और उसी अव्यक्त की सत्ता में महारात्रि के आते ही विलीन हो जाता हैं। भारतीय चिन्तनधारा के अनुसार चतुर्दश लोकों की समष्टि का ही नाम ब्रह्माण्ड है। जिसका नियमन सत्यलोक से होता है। ये लोक भौतिक शरीर के लिए अगम्य हैं। इन लोकों में गमन सूक्ष्म शरीर से ही सम्भव है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार जहाँ हजारों लाखों आकाशगंगायें भ्रमण एवं प्रसरण शील हैं उसे ब्रह्माण्ड कहा जाता है। एक अर्थ में हम इसे अन्तरिक्ष भी कह सकते हैं क्योंकि **''अन्तर्मध्ये ऋक्षाणि नक्षत्राणि यस्य तदन्तरिक्षमिति''** अर्थात् जिसके मध्य में ग्रह, नक्षत्र, तारें एवं तारे समूह विद्यमान रहते हैं उसे अन्तरिक्ष कहते हैं। कुछ लोगों ने इस आधार पर अन्तरिक्ष को ही ब्रह्माण्ड कह दिया परन्तु ब्रह्माण्ड तो उसे कहा जाएगा जिसमें अन्तरिक्ष के सहित समग्र दृश्य जगत् विद्यमान है। इसका स्वरूप कैसा है? यह कितना बड़ा है? आदि का उत्तर कैसे दिया जा सकता है क्योंकि हम इसी में विद्यमान हैं जिधर भी देखते हैं उधर अनन्त और अपार दिखाई देता है। इसीलिए वेदों में **'अनन्तोऽस्यपारोऽसि'** कहा गया है तथापि चिन्तनधारा में संलग्न मनीषियों ने वैदिक काल से ही इसे दीर्घ-वर्तुलाकार पिण्ड के रूप में स्वीकार किया है। 'ब्रह्माण्ड' शब्द ही अपने में अण्डाकार होने का बोध कराता है। वैदिकोत्तरकालीन खगोलविद् भास्कराचार्य ने ब्रह्माण्ड को 'कटाहसम्पुटाकार' माना है। इनका कहना है कि जैसी आकृति दो विराट् कड़ाहों को मिलाकर बनती है उसी आकार में ब्रह्माण्ड भी होना चाहिए।

आज के विज्ञान के नूतन ज्ञान के अनुरूप हमारी पृथ्वी सौर-परिवार की एक सदस्या है। इस सौर-परिवार का अधिपति अथवा नियामक हमारा सूर्य है जिसके चतुर्दिक हम ही नहीं हमारे परिवार के सभी साथी ग्रह गतिमान हैं। अतः सूर्य हमारी धुरी है, न चाहते हुए भी हमें इस धुरी के चतुर्दिक घूमना ही होगा क्योंकि इसी भ्रमण में हमारे जीवन का अस्तित्व है। हमारा सूर्य भी अपनी आकाशगंगा में अपने सम्पूर्ण परिवार के साथ गतिमान है। आकाशगंगायें स्वयं प्रसरणशील अथवा गतिशील हैं। ये आकाशगंगायें कहाँ किस केन्द्र के वशीभूत गतिशील है? इनमें से यदि किसी की भी गति में अवरोध आया तो उसका विनाश निश्चित ही है। अतः यह सिद्ध है कि गति में ही जीवन का अस्तित्व है।

भारतीय चिन्तन के अनुसार 'भू लोक' ही पृथ्वी है। भू लोक स्वर्लोक पर आधारित है अर्थात् 'स्वः' लोक को सूर्यलोक कहा गया है। 'स्वर्लोक' जनलोक पर आधारित है। जन लोक को ही परमेष्ठी मण्डल अर्थात् धाता कहा गया है। सम्प्रति इसी धाता लोक को काश्यपी निहारिका के नाम से जाना जाता है। अतः कह सकते हैं कि स्वलोक की धुरी जनलोक तथा जन लोक की धुरी सत्यलोक है। इस आधार पर यह सिद्ध होता है कि सत्य ही सबकी मूल धुरी है क्योंकि सत्यलोक पर जनलोक का, जनलोक पर स्वलोक का तथा स्वलोक पर भूलोक का अस्तित्व विद्यमान है।

इस असीम ब्रह्माण्ड के रहस्यों का ज्ञान हमें तब हो पायेगा जब हम उस नियामक तत्व के समीप पहुँचने की बात करेंगे परन्तु क्या भौतिक शरीर से वहाँ तक पहुँचना आज तक के भौतिक ज्ञान की दृष्टि से सम्भव है? अभी तो हमें अपने सौरपरिवार का ही पूर्ण ज्ञान नहीं हो पाया। पहले हमको सौर-परिवार से बाहर निकलना होगा; उसके पश्चात आकाशगंगा से, तब सम्भवतः हमें इस विश्व का कुछ अंश समझ में आ सकता है। आकाशगंगा से बाहर निकलने का अभिप्राय है सत्य लोग के निकट पहुँचने की यात्रा। क्या यह सम्भव है? यह तभी सम्भव है जब प्रकाश की गति से चला जाए। आइन्स्टीन के सापेक्ष सिद्धान्त के अनुसार प्रकाश के वेग से यात्रा करने पर बहुत से मनोरंजक परिणाम सामने आएँगे। इसी तरह की एक कथा पुराणों में राजा रेवतक की पुत्री रेवती के विवाह प्रसंग के

सन्दर्भ में मिलती है। अन्तिम निष्कर्ष यह है कि भौतिक शरीर से यह सब कुछ अभी बहुत दूर है। अर्थात् यह कह सकते हैं कि असम्भव हैं इसीलिए हमारे ऋषि-महर्षियों ने अवान्तर लोकों का ज्ञान स्थूल शरीर से नहीं अपितु सूक्ष्म शरीर से प्राप्त किया परन्तु सूक्ष्म शरीर का सम्बन्ध भौतिक शास्त्र से नहीं अपितु इसका सम्बन्ध अध्यात्म जगत से है, अध्यात्म जगत का प्रारम्भ बिन्दु ही भौतिक का अन्तिम बिन्दु है। इसीलिए अध्यात्म विद्या सामान्य के लिए अगम्य है। अध्यात्म के सम्यक् ज्ञान के लिए सर्वप्रथम भौतिक ज्ञान आवश्यक है। इसलिए किसी भी वस्तु के समग्र ज्ञान के लिए सर्वप्रथम आधिभौतिक प्रक्रिया का ही महत्व होता है इसके पश्चात् आदि-दैविक और आध्यात्मिक का क्रम आता है। इन तीनों प्रविधियों के बाद ही किसी वस्तु अथवा पिण्ड का समग्र ज्ञान हो सकता है।

इस लघु ग्रन्थ में ब्रह्माण्ड और सौर-परिवार के भौतिक स्वरूप का वर्णन प्राचीन एवं नूतन दोनों धाराओं के माध्यम से करने का प्रयास किया गया है। क्योंकि ज्योतिषशास्त्र के व्यष्टिपरक पक्ष को अर्थात् आध्यात्मिक पक्ष को समझने के लिए इस भौतिक जगत को समझना नितान्त आवश्यक है अन्यथा समग्र ज्ञान सम्भव नहीं है।

इस पुस्तक का लेखन ब्रह्माण्ड एवं सौर-परिवार के ज्ञान में रुचि रखने वाले पाठकों की दृष्टि से किया गया, जिससे कि उनको नूतन एवं प्राचीन ज्ञान का सम्मिश्रण समझ में आ सके और वे अपने ज्ञान को और पुष्ट बनाने में समर्थ हो सकें। इस पुस्तक में यह भी प्रयास किया गया कि प्राचीन भारतीय ज्ञान को वर्तमान परिपेक्ष में किस रूप में देखना चाहिए। जहाँ एक ओर यह पुस्तक विज्ञान का कम ज्ञान रखने वाले पाठकों के लिए अत्यन्त उपयोगी है वहीं यह पुस्तक विज्ञान का ज्ञान रखने वाले पाठकों के लिए प्राचीन भारतीय ज्ञान से अवगत कराते हुए नये दिशा निर्देश भी करेगी। मुझे आशा ही नहीं अपितु विश्वास भी है कि यह पुस्तक खगोल ज्ञान में रुचि रखने वाले पाठकों के लिए ज्ञान एवं रुचि वर्धक सिद्ध होगी।

इस अवसर पर अपने कीर्तिशेष पितृचरणों में श्रद्धासुमन अर्पित करता हूँ तथा उन आचार्यों एवं गुरुवृन्दों के चरण-कमलों में श्रद्धावनत होते हुए उन्हें शतशः प्रणाम करता हूँ, जिनकी ज्ञानप्रभा से मैं लेखन कार्य में संलग्न हूँ।

मुझे इस पुस्तक लेखन में प्रेरित करने एवं इसके प्रकाशन की व्यवस्था करने में मेरे मित्र डॉ. मनोज कुमार श्रीवास्तव एवं डॉ. संगीतकुमार श्रीवास्तव का सहयोग अविस्मरणीय है। इसकी सज्जा एवं प्रकाशन में डॉ. कृष्ण कल्कि जी का सहयोग भी स्तुत्य है। मैं इन सभी मित्रों का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। अन्य सभी शुभेच्छुओं का भी मैं आभारी हूँ जिन्होंने मुझे इस कार्य के लिए उत्साहित एवं सहयोग प्रदान किया। बहुत सावधानी रखने पर भी त्रुटियों की सम्भावनाएँ रहती हैं, परन्तु सज्जन लोग गुणग्राही ही होते हैं, अतः त्रुटियों का मार्जन करते हुए ग्रन्थ के गुणों का अवलोकन करेंगे।

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा
सम्वत् 2061

—देवीप्रसाद त्रिपाठी

विषय-सूची

चित्र-सूची

ब्रह्माण्ड

आकाश में एक प्रकाश पुंज दिखाई देता है जिसकी आवश्यकता हमको अधिक मालूम पड़ती है। प्रातः एवं सायं काल में हम इसको भलीभाँति देख पाते हैं परन्तु यदि मध्याह्न काल में इसको देखने का दुस्साहस किया जाए तो हमें अपनी आँखें भी खोनी पड़ सकती हैं। जब इसको हमने क्षितिज पर ठीक ढंग से देखा तो यह हमको कुछ लाल व बड़ा दिखाई दिया, धीरे-धीरे वह चमकता हुआ प्रकाश पुंज हमारी आँखों से विलीन हो गया और काली घटा घिर आई, कुछ दिखाई नहीं देता है अर्थात् रात्रि हो गई। जहाँ हमको प्रकाश की आवश्यकता हो रही है वहीं आकाश की ओर जब दृष्टि करते हैं तो दिखाई दे रहा है कि एक नीली चादर पर कई प्रकाश बिन्दु बिखरे हुए हैं। इतने में इनके साथ ही एक प्रकाश का गोला उदित होता दिखाई दे रहा है परन्तु इसका प्रकाश दिन के प्रकाश पुंज की अपेक्षाकृत् कई गुणा कम है किन्तु बड़ा मनोहर लग रहा है। क्या हैं ये प्रकाश बिन्दु? रात भर इन बिन्दुओं को देखते हैं तो मालूम होता है कि ये बिन्दु अपना स्थान बदल रहे हैं। देखते-देखते ऊषा काल होने लगा, सारे प्रकाश बिन्दु विलीन हो गए और पूर्व दिन वाला ही पुंज (बिम्ब) निकल पड़ा जिसको हम आदित्य, सविता (सूर्य) आदि कई नामों से जानते हैं। इसका उद्भव कैसे हुआ? ये दिखाई देने वाले प्रकाश बिन्दु कहाँ हैं? कैसे हैं? इत्यादि प्रश्नों की झड़ी लग जाती है।

''न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम्।
नेमा विद्युतो भाति कुतोऽयमग्निः।।''

इस उक्ति से ज्ञात होता है कि वह क्या है? कौन? कहाँ है? जिस तक हमारे विशाल तेज पुंज, सूर्य, चन्द्र व तारों का प्रकाश समग्र रूप से नहीं पहुँच पाता है। जब सूर्य, चन्द्र एवं तारों का ही प्रकाश वहाँ नहीं पहुँच पाता है तो क्या विद्युत और अग्नि का प्रकाश पहुँच पाएगा? नहीं, कदापि नहीं। तो फिर जिज्ञासा होती है कि क्या है वह? वही तो है ब्रह्माण्ड, जहाँ एक नहीं लाखों सूर्य हैं परन्तु फिर भी मालूम नहीं कि उसका आदि अन्त कहाँ है? इस सम्बन्ध में *तैत्तिरीय ब्राह्मण* में कहा गया है कि–**''लोकोऽसि अनन्तोस्यपारोऽसि। अक्षितोऽस्यक्षस्योऽसि'** इत्यादि–तुम लोक हो, अनन्त हो, अपार हो, अक्षित हो, अक्षय हो। जो अपार, अक्षय, अनन्त है वह कहाँ से आया? क्या कोई जानता है? इसी विषय में *तैत्तिरीय ब्राह्मण* नामक ग्रन्थ में पुनः कहा गया है कि **''को अद्धा वेध क इह प्रवोचत। कुत अजाता कुत इयं विसृष्टिः''** इत्यादि। इस ऋचा में कहा गया है कि सृष्टि किससे उत्पन्न हुई तथा किसलिए इस सृष्टि की उत्पत्ति हुई, इसको कौन जानता है? अथवा कौन बता सकता है? जिन्हें हम देवता, ऋषि अथवा अवतार कहते हैं वे भी पीछे ही हुए। केवल आकाश ही एक ऐसा है जो परमाध्यक्ष है, वही जानता है परन्तु वह भी उसको जानता या नहीं इसको कौन जानता है? सृष्टि के विषय में जितने सम्प्रदाय (जिसे आज हम धर्म के नाम से जानते हैं) हैं उतने ही विचार भी हैं। इस सन्दर्भ में *छान्दोग्य उपनिषद* में एक कथा है कि गहन चिन्तन में लीन ब्रह्मा से एक नैसर्गिक विराट् अण्ड उत्पन्न हुआ। वह था ब्रह्माण्ड (ब्रह्म + अण्ड), वर्ष भर अण्ड बढ़ता रहा और एक दिन टूट कर दो भागों में विभक्त हो गया। इसके रूपहले भाग से बनी पृथ्वी और सुनहरा भाग बना आकाश। अंडे की सफेदी से पर्वत (पहाड़) का जन्म हुआ और झिल्ली से बादल बने। तरल पदार्थों से सागरों का जन्म हुआ आदि। ईसाइयों के धर्मग्रन्थ *बाईबिल* के अनुसार स्वयं परमपिता परमेश्वर ने अपने हाथों से 6 दिन में सृष्टि की रचना की। इस्लाम के धर्मग्रन्थ *कुरान* के मत में–''अल्लाह ने आसमानों और पृथ्वी को 6 दिनों में उत्पन्न किया आदि।''

तैत्तिरीय ब्राह्मण में कहा गया है कि पहले जल था उसके बाद पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार के बहुत विचार मिलते हैं जो कि कुछ तो अनुमान

प्रमाणों से दूर होने के कारण असत्य समझे जाते हैं और कुछ सत्य। सत्य और असत्य में दार्शनिक दृष्टि से विचार करें तो ज्यादा अन्तर जान नहीं पड़ता है। यह ऐसा ही अन्तर है जैसे प्रकाश और अन्धकार। प्रकाश को किसने बताया कि यह प्रकाश है, जब अन्धकार रहा तभी तो हम प्रकाश को जान सके। एक बिन्दु के समाप्त होते ही दूसरा बिन्दु अपने-आप समाप्त हो जाता है। एक की सत्यता के लिए दूसरे का रहना आवश्यक है, नहीं तो बात समझ में नहीं आ सकती है। कई सारे असत्य बिन्दु ही सत्य तक पहुँचाते हैं।

वेदान्त में कहा गया है कि **''तमः प्रधान विक्षेपशक्तिमदज्ञानोपहित-चेतन्यादाकाश आकाशद्वायुर्वायोरग्निरग्नेरापोऽद्भ्यः पृथिवी चोत्पद्यते इत्यादि''** अर्थात् कहते हैं कि तम प्रधान विक्षेप शक्ति मद ज्ञानोपहित चैतन्य से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी उत्पन्न हुई। प्रलयावस्था में पृथ्वी जल में, जल अग्नि में, अग्नि वायु में और वायु आकाश में लय होते जाएँगे परन्तु विज्ञान कहता है कि जल, पृथ्वी, तेज के परमाणु आकाश में सदा विद्यमान रहेंगे।

भारतीय चिन्तन धारा में ब्रह्माण्डोत्पत्ति के सिद्धान्त

जहाँ ग्रह, नक्षत्र, तारे, आकाशगंगाएँ, उल्काएँ, धूमकेतु, दैत्य, मानव, देवतादि समस्त जीव एवं भूर्भुवादि चतुर्दश लोक समन्वित भाव से होते हैं उसी का नाम ब्रह्माण्ड है। इसी को विकल्प से सृष्टि कहा गया है। वेदों तथा उपनिषदों में ब्रह्माण्ड का वर्णन सम्यक् प्रकार से कई जगहों पर दिखाई देता है। ब्रह्माण्ड का विवेचन वैदिक साहित्येत्तर भी उपलब्ध होता है। आदिकाल से ही मनुष्यों के पास विश्वोत्पत्ति के रहस्य को जानने की मुख्यतः दो प्रविधियाँ उपलब्ध थीं। जिसमें पहली प्रविधि का नाम अध्यात्म विज्ञान तथा दूसरी प्रविधि का नाम भौतिक विज्ञान था। आध्यात्मिक विज्ञान में योग एवं दिव्य दृष्टि के द्वारा समस्त ज्ञान प्राप्त होता था। समग्र ज्ञान के लिए आध्यात्मिक विधि सर्वाधिक उपयुक्त एवं समीचीन है क्योंकि आधि-भौतिकविधि (फिजिकल टेक्नोलाजी) के द्वारा तो केवल पंचज्ञानेन्द्रिय गम्य ज्ञान ही प्राप्त हो सकता है। इसके इतर विषयों का ज्ञान इस प्रविधि के द्वारा नहीं किया जा सकता है। यह ध्रुव सत्य है क्योंकि इस प्रविधि का अधिकतर ज्ञान परीक्षणशालाओं

में होता है। जहाँ परीक्षणशालाओं (प्रयोगशालाओं) की सीमा समाप्त हो जाती है वहीं से प्रारम्भ होती है अध्यात्म विज्ञान की सीमा। इसलिए यह अध्यात्मक विज्ञान सामान्य के लिए अगम्य हो जाता है। अध्यात्म विज्ञान ने **''यत् पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे''** के सिद्धान्त के द्वारा ही सौर जगत के रहस्य को समझा और समझाने का भी प्रयत्न किया। इसी आधार पर हमारे वेदों, पुराणों एवं अन्य शास्त्रों के ब्रह्माण्डोत्पत्ति ज्ञान को मुख्यतः चार भागों में विभक्त किया गया था। यथा–

1. विश्वकर्मा द्वारा ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति।
2. विराट् पुरुष द्वारा ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति।
3. ब्रह्मा के द्वारा ब्रह्माण्डोत्पत्ति।
4. प्रजापति के द्वारा ब्रह्माण्डोत्पत्ति।

1. विश्वकर्मा द्वारा ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति

''इयं विसृष्टिती, आ बभूव........योऽस्याध्यक्ष परमे व्योमन् सो.........वेद।''[1]
ऋग्वेद में परमेश्वर ही सृष्टि के स्रष्टा (बनाने वाले) हैं। परमेश्वर के गुणों की संज्ञा ही देवता है। ब्रह्माण्ड का सृजन देवताओं ने ही किया है। वे देवता हैं विश्वकर्मा, विष्णु, सविता, इन्द्र, वरुण आदि। ये देवता सृष्टि-निर्माण में विभिन्न कार्य करते हैं। इन्हीं के सहयोग से पूर्ण ब्रह्माण्ड-निर्माण का कार्य हुआ। सृजन में जिस पदार्थ का उपयोग हुआ इन देवताओं ने उसका नाम अन्तरिक्ष धूलिमेघ कहा, जिसको आधुनिक वैज्ञानिक ''कास्मिक डस्ट'' के नाम से जानते हैं।[2]

2. विराट् पुरुष द्वारा ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति

विराट पुरुष को ही लोग समग्र विश्व की आत्मा मानते हैं। जिनको वेदों में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की आत्मा कहा गया उसे ही आज वैज्ञानिक लोग 'सुप्रीम स्प्रीट' के नाम से जानते हैं। संपूर्ण ब्रह्माण्ड का यह शरीर बीज मात्र है

1. ऋग्वेद संहिता 10।129।07
2. ऋग्वेद संहिता 10।81।82

अर्थात् जैसे प्रत्येक वृक्ष के सूक्ष्म बीज में एक विशाल वृक्ष समाया रहता है उसी प्रकार एक ब्रह्माण्ड की सूक्ष्म इकाई में विराट् ब्रह्माण्ड का स्वरूप समाहित रहता है। विराट पुरुष के अंगों से ही पृथ्वी, आकाश, वायु, सूर्य, चन्द्र, मनुष्य आदि जीवों के साथ हर पार्थिव तत्त्व की उत्पत्ति होती है। **"पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम्।"**[1]

3. ब्रह्मा के द्वारा ब्रह्माण्डोत्पत्ति

ऋग्वेद के *नासदीय सूक्त* में वर्णन मिलता है कि सृष्टि के आदि में न 'सत्' था और न 'असत्' था, न आकाश था, न वायुमण्डल था, न दिन था, न रात्रि थी, केवल ब्रह्मा की ही सत्ता मात्र थी। ब्रह्मा के संकल्प मात्र से ही सृष्टि हुई। संकल्प एक जाज्वल्यमान तप था। **यथा–तम आसीत्तमसा दृढ़मग्रे...सलिलं सर्वया इदम्।**[2] इसी तरह का वर्णन ऋग्वेद में कई जगहों पर मिलता है। *ऋग्वेद* के 10वें मण्डल के 190 वें सूक्त में विशेष वर्णन मिलता है।[3] जाज्वल्यमान परम तेज से ऋत् (सत्य) की उत्पत्ति हुई। इसके पश्चात् आकाश तथा आकाश के अनन्तर परमाणुओं की सृष्टि हुई तब पदार्थ का सृजन हुआ।[4]

4. प्रजापति के द्वारा ब्रह्माण्डोत्पत्ति

स्वयंभू परमेश्वर ने सर्वप्रथम विश्वोत्पत्ति के लिए प्रजापति की सृष्टि की। श्रुतियों में प्रजापति को ही हिरण्यगर्भ कहा गया है, यथा–**"हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्"**।[5] हिरण्यगर्भ एक ऐसी स्थिति है जहाँ से सृजन प्रक्रिया आज के वैज्ञानिकों को ठीक समझ में आती है क्योंकि जब तेज (ENERGY) हिरण्यगर्भ के रूप में परिणित होता है तभी विस्फोट होता है। विस्फोट के पूर्व की स्थिति हिरण्यगर्भ की ही है। कह

---

1. तत्रैव, पुरुष सूक्त 1/90, यजु. सं. 31।2, अथर्व सं. 12।1
2. ऋग्वेद संहिता 10।229।2
3. ऋग्वेद संहिता 30।190।3
4. वृहदारण्यकोपनिषद् 2।9।20, विष्णुपुराण 1।2।23
5. यजुर्वेद संहिता 13।4, 60।9, ऋग्वेद सं. 10।121।1-7

सकते हैं कि तेज (ENERGY) की एक स्थिति ही हिरण्यगर्भ है। *शतपथ ब्राह्मण* में इसी प्रसंग में हिरण्यगर्भ को अर्ध 'ज्योति' कहा गया है। यथा—**ज्योतिर्वै हिरण्यम्, ज्योतिरेषोऽमतं हिरण्यम्।**[1] निश्चित ही 'हिरण्यम्' एक अखंड मूल तत्व रूप ज्योति है। अमरकोशकार ने 'हिरण्यगर्भ' का निर्वचन इस प्रकार किया हैं यथा—**"हिरण्यं हिरण्यमयं अण्डं तस्य गर्भ इव।"** अर्थात् ज्योतिर्मय पिण्ड जिसके गर्भ में है वह हिरण्यगर्भ हुआ। वैदिक साहित्य में हिरण्यगर्भ का विवेचन विस्तृत रूप में मिलता है।

वेद दर्शन एवं विज्ञान सम्बन्धी रहस्यों के आगार हैं किन्तु वैदिक साहित्य की भाषा परोक्ष, प्रतीकात्मक एवं संकेतात्मक हैं। अलंकारों एवं रूपकों से परिपूर्ण भाषा है। सामान्य भाव में इन मन्त्रों के अर्थ एवं भाव समझ में नहीं आ पाते हैं क्योंकि वेदों के अपने प्रतीक (सिम्बल) हैं। वेद की परिकल्पनाओं के प्रतिपादन में उन प्रतीकों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। वेद के भाव एवं अर्थ को समझने के लिए उसके प्रतीकों (सिम्बलों) को समझना आवश्यक है अन्यथा हम वेद-वर्णित परिकल्पना को नहीं समझ सकते हैं।

आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि में ब्रह्माण्डोत्पति के सिद्धान्त

सृष्टि विज्ञान (COSMOLOGY) आधुनिक गवेषणा का एक महत्त्वपूर्ण विषय है। आइन्सटीन के सूत्रों के आधार पर आज आधुनिक विज्ञान ने सर्वाधिक प्रचलित सिद्धान्त महाविस्फोट माडल (बिगबैंग) तैयार किया। इस प्रतिमान के अनुसार सृष्टि का आरम्भ एक महान विस्फोट से प्रारम्भ हुआ। इसी प्रकार इस सिद्धान्त के सहित आधुनिक वैज्ञानिकों के ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के सन्दर्भ में तीन सिद्धान्त विशेषतः प्रचलित हैं, यथा—

1. स्थिर दशा सिद्धान्त
2. विस्फोटक सिद्धान्त
3. स्पन्दनशील सिद्धान्त

1. शतपथ ब्राह्मण 6।7

1. स्थिर दशा सिद्धान्त

ब्रिटेन निवासी सुप्रसिद्ध खगोलशास्त्री डॉ. फ्रेडहायल महोदय इस सिद्धान्त के प्रवर्तक हैं। इनके मतानुसार ब्रह्माण्ड का चिरकाल से ही अस्तित्व था। बहुत काल से प्रसारित होने वाले इस ब्रह्माण्ड में अभी तक परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होता है। आकाशगंगाएँ एक दूसरे से परस्पर दूर होती जा रही हैं। इस प्रसरण प्रक्रिया से आकाशगंगा के मध्य में जो अवकाश होता है अर्थात् जो खाली जगह होती है उस स्थान में हाइड्रोजन और गैसीय कणों की उत्पत्ति स्वयं ही होती है। ये गैसीयकण आकाशगंगा के मध्यभाग की रिक्तता को पूर्ण करते हैं। इस प्रकार यह ब्रह्माण्ड सतत प्रसरित हो रहा है। चिरकाल से ही इसकी उत्पादन प्रक्रिया चल रही है। आदि-अन्तहीन ब्रह्माण्ड वस्तुतः अनन्त और चिरजीवी है।

2. विस्फोटक सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के प्रवर्तक कैम्ब्रिज निवासी खगोलशास्त्री श्री रायल महोदय हैं। वे कहते हैं कि इस ब्रह्माण्ड का जन्म एक हजार करोड़ वर्ष पूर्व सघन पदार्थों के मध्य महान विस्फोट से हुआ। विस्फोट के बाद तारों एवं आकाशगंगाओं का जन्म हुआ। ये सभी तारे, तारापुंज एवं आकाशगंगाएँ ब्रह्माण्ड के केन्द्र से परिधि की ओर फैल रही हैं। कह सकते हैं कि इसकी परिधि बढ़ रही है अर्थात् परिधि फैल रही है। यह प्रसरणशीलता महाविस्फोट से उत्पन्न हुई, ऐसा वैज्ञानिकों का मानना है। विस्फोट विशेषज्ञ खगोलशास्त्री मानते हैं कि जब प्रसरणशीलता अवरूद्ध होगी तो गुरुत्वाकर्षण से सभी आकाशीय पिंड परस्पर आकर्षण से विनष्ट हो जायेंगे। यह काल ब्रह्माण्ड के विनाश का काल होगा।[1]

3. स्पन्दनशील सिद्धान्त

इस सिद्धान्त का द्वितीय नाम दोलन सिद्धान्त भी है। इस सिद्धान्त के प्रवर्तक एलेन संडेज एवं उनके साथी वैज्ञानिक हैं। ये मानते हैं कि विस्फोट के

1. भारतीय सृष्टि विद्या पृ. 197

अनन्तर प्रसरण होता है तथा प्रसरण के अनन्तर पुनः ब्रह्माण्ड संकुचित होता है। संकुचित होकर पुनः विस्फोट होता है तथा तब पुनः प्रसरण होता है। संडेज का कहना है कि प्रायः 120 करोड़ वर्ष पूर्व भयंकर विस्फोट हुआ, तब से यह विश्व फैलता जा रहा है। यह प्रसार-क्रम प्रायः 290 करोड़ वर्ष तक चलता रहेगा। तब गुरुत्वाकर्षण अधिक विस्तार पर रोक लगा देगा। इसके पश्चात् पदार्थ का संकुचन प्रारम्भ हो जाएगा। अन्ततः इसमें पुनः विस्फोट होगा और तब प्रसार होगा। यह प्रक्रिया 410 करोड़ वर्षों तक प्रायः चलती रहेगी। विश्व के विकास का यह नवीनतम सिद्धान्त समझा जाता है। इस प्रकार का क्रम, उत्पत्ति और विनाश का, सतत चलता रहता है। इस चक्र में आठ हजार करोड़ वर्ष व्यतीत होते हैं।

ब्रह्माण्ड शब्द का व्यवहार विश्व शब्द से भी होता है। इस सन्दर्भ में डॉ. मुरारीलाल शर्मा महोदय कहते हैं कि विश्व शब्द से आज मात्र भौतिक विश्व ही ग्रहण किया जाता है। इस परिभाषा का सम्बन्ध विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र एवं गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र से है। इसको हम ऐसा भी कह सकते हैं कि जहाँ भौतिकशास्त्र के नियमों का प्रयोग होता है। उसे ही भौतिक विश्व कहते हैं। यह विश्व दो प्रकार का उपलब्ध होता है—सूक्ष्म और स्थूल। सूक्ष्म विश्व में विद्युत कणों का संघात है जिनकी संज्ञा आधुनिक वैज्ञानिकों के द्वारा प्रोटोन, इलेक्ट्रोन, न्यूट्रान नाम से की गई है। प्रोटोन को धन विद्युत कण एवं इलेक्ट्रोन को ऋण विद्युत कण कहते हैं। न्यूट्रान शून्य विद्युत कण है। इन विद्युत कणों के संख्या-भेद से विभिन्न मूल द्रव्यों का जन्म होता है। तापमान के परिस्थिति-भेद से विभिन्न मूल तत्वों की उत्पत्ति हो कर हमको स्थूल विश्व के रूप में दिखाई देते हैं। सूक्ष्म विश्व में विद्युत चुम्बक क्षेत्र की अदृश्य तरंगें भी विद्यमान हैं। गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र सुग्राह्य पदार्थ विशेष द्रव्य है। मूर्त्तद्रव्य की तीन प्रकार की अवस्थाएँ होती हैं : तरल, जैसे—जलादि वस्तुएँ; गैस, जैसे धूम वाष्प आदि; दृढ़कायरूप, जैसे—मिट्टी पत्थर आदि। स्थूल विश्व में प्रायः मूर्त्तद्रव्यों का दर्शन होता है। यहीं स्थूल जगत के खगोलीय पिण्डों का दर्शन होता है। स्थूल एवं सूक्ष्म विश्व का विवेचन आधुनिक प्राचीन दोनों विधियों से पर्याप्त मात्र में उपलब्ध होता है। इसी प्रसंग में भारतीय खगोलशास्त्रियों ने ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के सन्दर्भ में कुछ इस प्रकार

कहा कि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति ब्रह्म-दिन के आरम्भ से हुई। ब्रह्मा के द्वारा ही समग्र सृष्टि की रचना हुई। ब्रह्मा के दिन के अन्त में प्रलय और ब्रह्मा के दिन के आरम्भ में पुनः सृष्टि हुई अर्थात् कह सकते हैं कि ब्रह्मा का दिन सृष्टि है तथा रात्रि प्रलय है। यह सृष्टि प्रलय का सिद्धान्त ब्रह्मा की पूर्णायु तक चलता रहेगा। इस ब्रह्माण्डोत्पत्ति की कल्पना में आधुनिक विज्ञान की स्पन्दनशील विश्वोत्पत्ति कल्पना से समीपता पाई जाती है। आधुनिक स्पन्दनशील सिद्धान्त के समर्थक वैज्ञानिकों के द्वारा संपूर्ण ब्रह्माण्ड की आयु जो निश्चित की गई वह भी हमारे भारतीय सिद्धान्तों के ही समीप है, कह सकते हैं कि एक ही तरह की परिकल्पना है। यद्यपि एक कल्प में वर्षों की संख्या कुछ न्यून है। कल्प के अन्त में प्रलय की कल्पना की गई है। कल्प को ही ब्रह्मा का दिन कहा गया है। ब्रह्मा के अहोरात्र में 2 कल्प हैं। क्योंकि जितने वर्षों का ब्रह्मा का दिन होता है उतने ही वर्षों की रात भी होती है, अतः एक कल्प में प्रायः 4.32×10^9 वर्ष माने गए हैं। इतने वर्षों तक सृष्टि की कल्पना तथा इतने ही वर्षों तक प्रलय की कल्पना की गई है।

आधुनिक वैज्ञानिकों ने विश्व की कल्पना वलयाकार आकृति में की है परन्तु यह कल्पना भी नवीन नहीं है क्योंकि इसी प्रकार की कल्पना कई वर्षों पूर्व भास्कराचार्य ने अपने *सिद्धान्त शिरोमणि* में प्रस्तुत की है कि ब्रह्माण्ड का आकार 'सम्पुट कटाहवत्' (दो कड़ाइयों को मिलाने से जो आकृति बनती है) कहा है। भास्कराचार्य ने कटाहसम्पुटाकार ब्रह्मांड का व्यासमान 18712069200000000 योजन माना जो कि आइन्स्टीन के व्यासमान से कुछ न्यून है परन्तु यदि प्रसरणशील प्रक्रिया को स्वीकार किया जाए तो भास्कराचार्य का व्यासमान न्यून ही होगा क्योंकि भास्कर के बाद आइन्सटाइन का सिद्धान्त प्रकाश में आया। इससे ज्ञात होता है कि हमारे आचार्यों ने भी ब्रह्मांड के विषय में अपनी स्वतंत्र कल्पनाएँ प्रस्तुत की हैं जिनका अनुकरण अप्रत्यक्ष रूप से आधुनिक वैज्ञानिकों ने किया है। भास्कराचार्य के अनुसार सृष्टि से शकारम्भ तक 1972947179 वर्ष व्यतीत हुए हैं अर्थात् अभी तक की आयु सृष्टि की 2 अरब वर्ष के समीप जाती है जबकि वर्तमान वैज्ञानिक 3 अरब वर्ष के समीप मानते हैं। इससे ज्ञात होता है कि भारतीय आचार्यों

एवं वर्तमान विश्वोत्पत्ति के आचार्यों के विचारों में समानता है। यद्यपि संख्याओं का भेद दिखाई देता है परन्तु सैद्धान्तिक भेद की प्रतीति नहीं होती है।

√ब्रह्माण्ड के स्थूल सदस्य

किसी भी स्थिति को समझने के लिए उसके घटकों को समझना भी आवश्यक है। ऐसा भी कह सकते हैं कि समष्टिगत रूप को समझने के लिए उसके प्रत्येक व्यष्टिगत रूप (इकाई) को समझना आवश्यक होगा। यदि हम आधे से अधिक मात्रा में व्यष्टिगत इकाइयों को समझ जाते हैं तो समष्टि को समझना सरल हो जाता है। अगर हम किसी व्यक्ति के शरीर की स्थूल कोशिकाओं को आधे से अधिक जानते हैं तो संपूर्ण शरीर के सन्दर्भ में हमको अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त हो सकती है। इसलिए ब्रह्माण्ड रूपी शरीर को समझने के लिए इसके व्यष्टिगत रूप को समझना आवश्यक होगा। सर्वप्रथम हम पृथ्वी से ही विचार करते हैं। पृथ्वी गोल है इसलिए इसको 'भूगोल' कहते हैं। प्राचीनकाल में ग्रहों की गणनाएँ पृथ्वी को ध्यान में रखकर की गईं। इसीलिए लोगों ने इस सिद्धान्त को भूकेन्द्रीय सिद्धान्त कह दिया। आज भी आकाश की स्थिति, परिस्थिति का ज्ञान पृथ्वी को ही ध्यान में रखकर किया जाता है। भारतीय प्राचीन ज्योतिषशास्त्र में यह धारणा स्पष्ट थी कि ग्रहों के केन्द्र में पृथ्वी नहीं है। पृथ्वी के बाहर उनका केन्द्र है इस गणना में इसे मात्र ग्रह केन्द्र के रूप में स्वीकार किया गया। इसी सन्दर्भ में आचार्य भास्कर (द्वितीय) कह रहे हैं कि—**यस्मिन वृते भ्रमति खचरो नास्ति मध्ये कुमध्ये''।**

आधुनिक विज्ञान में यह धारणा कोपरनिकस से प्रारम्भ होती है कि केन्द्र में पृथ्वी नहीं, सूर्य हैं। पृथ्वी अपने अक्ष पर भ्रमण करती है तथा वर्ष प्रमाण से वह सूर्य की परिक्रमा करती है। प्राचीन भारत में ग्रहों का भ्रमण प्रतिवृत्त में माना जाता है जिसका केन्द्र ग्रह-केन्द्र के नाम से जाना जाता है। ग्रहों का स्पष्ट मान कक्षावृत्त में लिया जाता है जिसके केन्द्र में पृथ्वी है। इसी को ध्यान में रखकर लोगों ने भूकेन्द्रीय सिद्धान्त कह दिया। इस प्रकार, ग्रहों को स्पष्ट करने के लिए दो केन्द्रों की आवश्यकता समझ

में आती है। आधुनिक खगोल सिद्धान्तकारों के अनुसार सभी ग्रह दीर्घवृत्ताकार कक्षा में भ्रमण करते हैं। भारतीय ज्योतिष की उच्चनीच परिकल्पना भी दीर्घवृत्ताकार परिकल्पना से भिन्न नहीं है, मात्र समझने का फेर है। सम्प्रति ग्रहों की गति के विषय में केपलर के तीन सिद्धान्त सर्वमान्य हैं जिनकी पुष्टि न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त से होती है। गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त की चर्चा भी न्यूटन के कई सौ वर्ष पूर्व भारतीय ज्योतिष के ग्रन्थों में उपलब्ध होती है। *सिद्धान्त शिरोमणि* की रचना करते हुए *गोलाध्याय* में भास्कराचार्य ने सन् 1150 में ही स्पष्ट रूप में कहा है कि पृथ्वी में आकर्षण शक्ति है जिसके कारण आकाश में स्थित गुरु पदार्थों को पृथ्वी अपनी ओर खींचती है, यथा–

आकृष्टशक्तिश्च मही तया यत्
खस्थं गुरु स्वाभिमुखं स्वशक्त्या।
आकृष्यते तत्पततीव भाति
समे समन्तात् क्व पतत्वियं खे।।

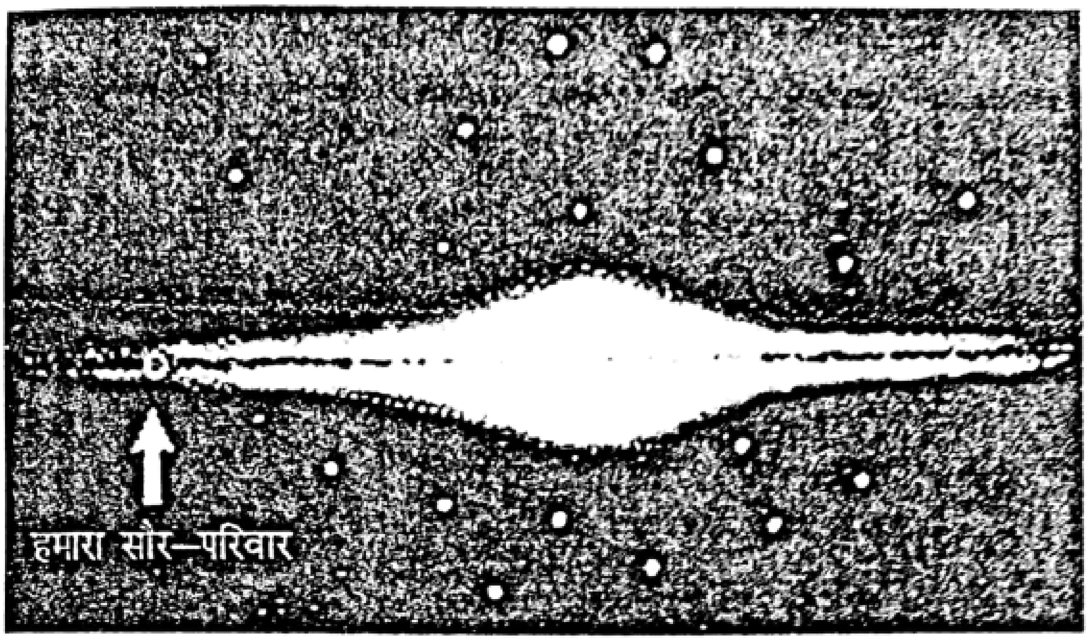
हमारे सौर-परिवार में ग्रहों के अतिरिक्त धूमकेत्वादि सदस्य भी हैं। इनकी कक्षायें प्रायः परवलयाकार होती हैं। ये प्रायः हमारे सौर-परिवार के नियमों से नियमित नहीं होते हैं इसलिए इनको सौर-परिवार के दानव की संज्ञा दी जाती है। ये हमारे सौर-परिवार में प्रवेश करके सूर्य का चक्कर लगाते हुए पुनः सुदूर चले जाते हैं। कई धूमकेतु निश्चित समय में पुनः आते हैं। जब ये धूमकेतु सूर्य के निकट पहुँचते हैं तो इनके पुच्छ भाग में भग्नता आ जाती है। ये भग्नांश कभी-कभी भूमि के वायुमण्डल में प्रवेश कर जाते हैं। अधिकतर तो घर्षण के कारण भस्मीभूत हो जाते हैं तथा कुछ कभी-कभी भूमि पर भी गिरते हैं। इसे ही उल्कापात कहते हैं। उल्कापिंडों के पतन से पृथ्वी में गड्डे हो जाते हैं। घात-प्रतिघात के कारण ये पिण्ड लौह एवं पाषाणमय हो जाते हैं। अन्य ग्रह-पिण्डों में भी उल्कापात होते हैं। आकाश में दुग्ध-मेखला के रूप में एक आकृति दिखाई देती है जिसे आकाशगंगा (मिल्की वे) कहते हैं। इसी आकाशगंगा में कुछ-कुछ स्थानों पर निहारवत् कुछ पदार्थों का समुदाय दृष्टिगोचर होता हैं। यह पदार्थ वाष्पमय होता है जिसे हम नीहारिका कहते हैं। नीहारिका के सदृश आकाश में वृहद्

प्रकाशपुंजों का समाहार दिखाई देता है। ये सभी प्रकाशपुंज आकाशगंगा के ही सदस्य हैं। सम्प्रति इनको कुछ विभिन्न रूपों में देखा जाता है। इन्हें ही हम ब्रह्माण्ड के स्थूल सदस्यों के रूप में देखते हैं जो इस प्रकार हैं।

1. आकाशगंगा
2. नीहारिका
3. तारे व तारापुञ्ज
4. सौर-परिवार

1. आकाशगंगा

हमारे सूर्य के सदृश असंख्य तारों एवं तारक पुंजों का समुदाय जहाँ दिखाई देता है उसी को आकाशगंगा कहते हैं। हमारी पृथ्वी की अपनी एक आकाश-गंगा या मन्दाकिनी है जिसे दुग्ध-मेखला (मिल्की वे) कहते हैं। इस आकाशगंगा की विशिष्टता यह है कि इससे होकर एक सम्पूर्ण वृत्त में प्रकाश की धारा प्रवाहमान दिखाई देती है। आकाशगंगा ब्रह्माण्ड की एक मनोहारी वस्तु है। पृथ्वी से देखने में यह उक्त प्रकाश धारा आकाश में दिखाई देती है। वास्तव में यह असंख्य तारों के टिमटिमाने से बनी है। पाश्चात्यों ने इस प्रकाश धारा को 'मिल्की वे' (दुग्ध-मेखला) की संज्ञा दी। यह नाम आकाशगंगा का व्यापक रूप से प्रयुक्त हुआ। आकाशगंगा ने पृथ्वीस्थ सभी लोगों को इतना अधिक मोहित किया कि लोगों ने इसे विभिन्न काल्पनिक कथाओं एवं सुन्दर-सुन्दर नामों से संजोया। मध्य एशिया के यकूत लोगों ने इसे 'ईश्वर का पद्चिह्न' कहा, एस्किमो लोगों ने 'धवल भस्म का मार्ग' बताया। यूनानी लोगों ने इसे 'स्वर्ग ले जाने वाला मार्ग' कहा तो चीन के लोगों ने इसे 'स्वर्ग की नदी' तथा हिब्रू लोगों ने 'प्रकाश की नदी' कहा। प्राचीन भारतीय लोगों ने इसे स्वर्गगंगा, आकाशगंगा, मन्दाकिनी, देवगंगा, क्षीरनदी, आकाशनदी, आकाशयज्ञोपवीत आदि कहा। खगोलशास्त्रियों की गणना के अनुसार हमारे ब्रह्माण्ड में सहस्रों अरब आकाशगंगाएँ हैं। प्रति आकाशगंगा में अनुमानतः हजारों अरब तारे होते हैं। हमारी आकाशगंगा में हमारा सौर-परिवार तो एक कोने में बिन्दु मात्र दिखाई देता हैं। कल्पना करें, जैसे पूरे विश्व में एक गाँव और पुनः उस गाँव में मेरा परिवार जैसी स्थिति

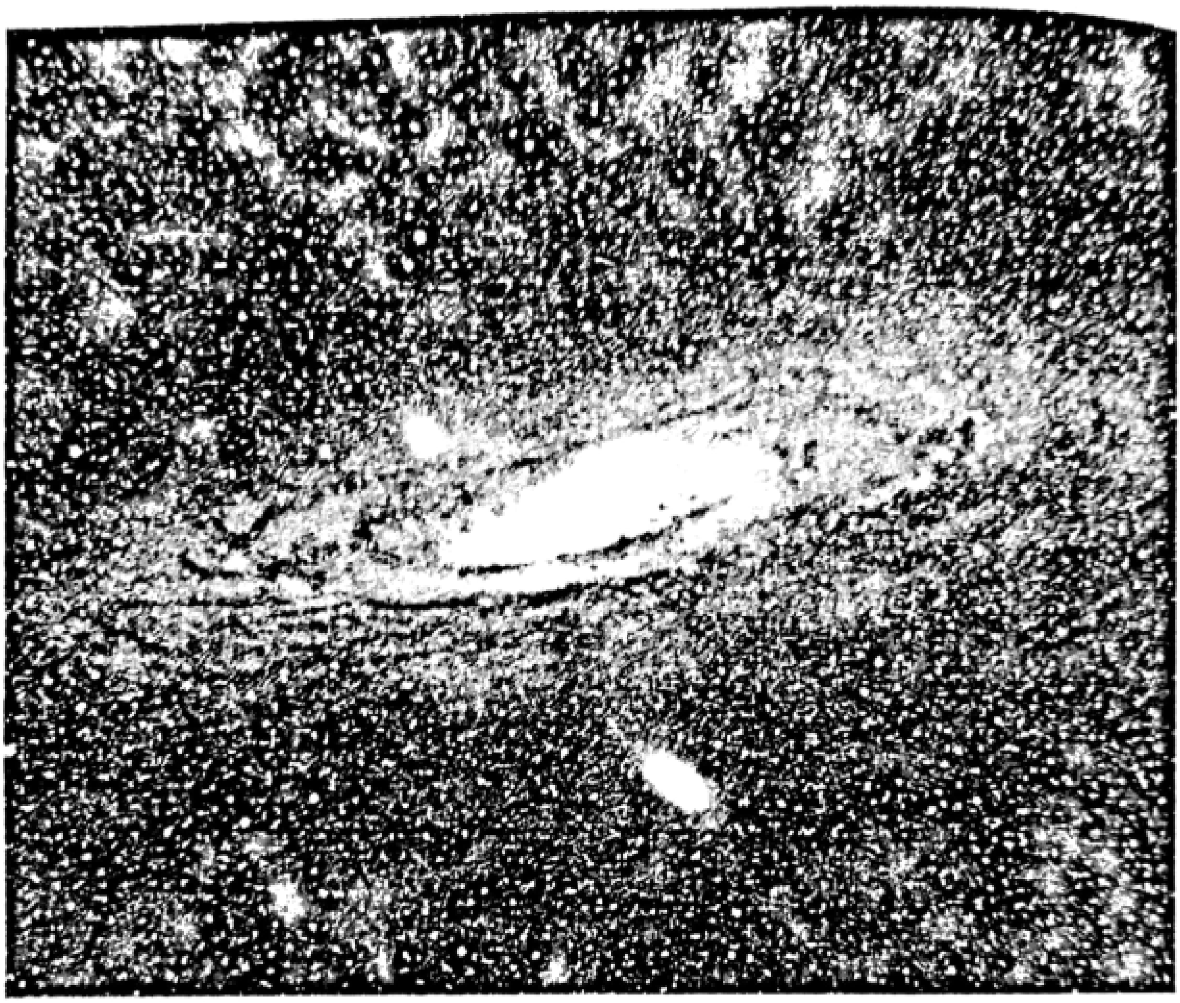


चित्र 1 आकाशगंगा

में कोई व्यक्ति अपने अस्तित्व का अनुभव करता है वैसे ही ब्रह्माण्ड में हमारा सौर-परिवार भी है। आकाशगंगा का व्यासमान प्रायः 100000 प्रकाश वर्ष है। आकाशगंगा में तीन प्रकार की तारों की श्रेणियाँ हैं। पहली श्रेणी में वे तारे आते हैं जो आकाशगंगा के सर्पिलों और नाभि में स्थित हैं। सूर्य भी इसी में समाहित है, इसे मन्दाकिनी गुच्छ कहते हैं। इसके बाहर प्रभामण्डलीय तारे हैं। यहाँ बहुत से तारों ने एक छोटी मन्दाकिनी का रूप भी लिया है। इनको हम गोलाकार तारागुच्छ कहते हैं। इनमें बहुत पुराने तारे पाए जाते हैं। इन गोलाकार गुच्छों से दूर करोड़ों तारें हैं जो आकाशगंगा के बाहरी भाग में छिटके पड़े हैं। ये तारे भी आकाशगंगा के ही अंग हैं।

हमारी आकाशगंगा का केन्द्र खगोलीय धूल कणों से इस तरह ढंका हुआ है कि प्रकाश दूरबीनों के द्वारा इसका अध्ययन सम्भव नहीं है। जो कुछ हमें ज्ञात है वह रेडियो दूरबीनों के द्वारा हुआ है। हमारे सूर्य से लगभग 32000 प्रकाश वर्ष दूर हमारी आकाशगंगा का केन्द्र है। यह केन्द्र का भाग गैस की घूमती हुई पट्टी जैसा दिखाई देता है। इस घूमती हुई पट्टी अर्थात् केन्द्र भाग में अनेक बड़ी क्रियाएँ होती रहती हैं। यहाँ नित्य नूतन तारे पैदा होते रहते हैं। इस भाग में करोड़ों तारे लुब्धक जैसे चमकदार दिखाई देते हैं। इसी से अनुमान किया जा सकता है कि आकाशगंगा का केन्द्र भाग कितना प्रकाश की किरणों से ओतप्रोत है। मेरीलैंड विश्वविद्यालय के

डॉ. जासेफ वेवर का कहना है कि हमारी आकाशगंगा के केन्द्र को एक 'ब्लैक होल' (कृष्ण विवर) अनुशासित करता है। उन्होंने परीक्षण में पाया कि केन्द्र से प्रभावशाली गुरुत्वाकर्षण की लहरें निर्गत हो रही हैं।



चित्र 2 दीर्घवृत्ताकार आकाशगंगा

आकार में आकाशगंगाएँ विभिन्न प्रकार की दिखाई देती हैं। कोई दीर्घवृत्ताकार, कोई सर्पिलाकार और कोई विषमाकार की दिखाई देती हैं। हमारी आकाशगंगा सर्पिलाकार दिखाई देती है। ब्रह्माण्ड में विस्फोट के बाद पदार्थों का विस्तार हुआ। अन्तरिक्ष में गैस से भरे खरबों प्रायद्वीप बने। गैस के ये प्रायद्वीप अपनी ही गति के कारण घूमने लगे। मन्द गति से घूमने वालों का आकार गोल हुआ। शेष वलयाकार रूपों में परिणित हुए। तीव्र गति से घूमने वाले प्रायद्वीपों का आकार चपटी तश्तरी (डिस्क) की तरह हो गया। इसके किनारे सर्पिली भुजाएँ निकली। इसके पश्चात इनका आकार 'सर्पिलाकार' दिखाई देने लगा। इस प्रकार विभिन्न प्रकार की आकाशगंगाएँ अस्तित्व में आई।

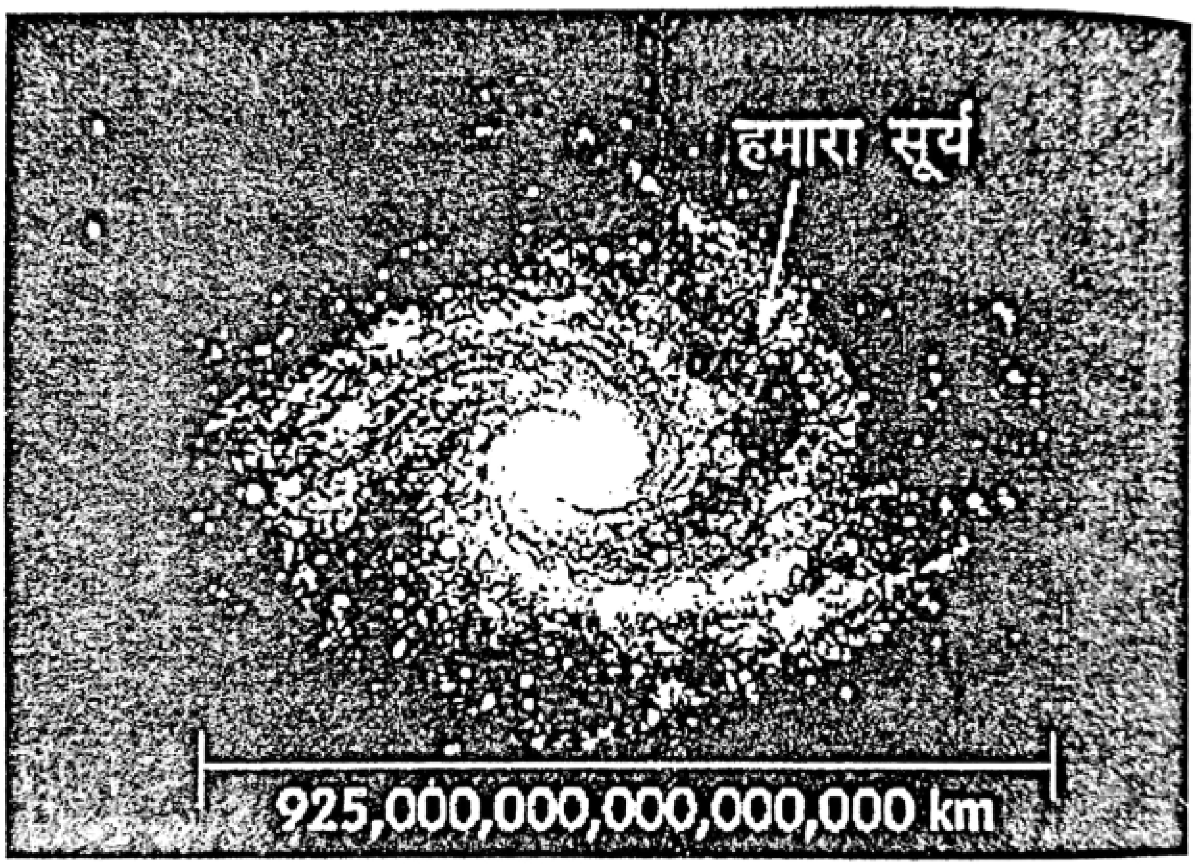
2. नीहारिका

आकाश में जो नीहारवत् तारों के पुंज दिखाई देते हैं उन्हें ही नीहारिका कहते हैं। ये तारों की तरह प्रकाशित होते हैं परन्तु ये तारे नहीं हैं क्योंकि इनका आकार तारों की तरह नहीं है। सामान्यतया आकाश में दो नीहारिकाएँ स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं जिनको देवयानी और त्रिभुज नाम से जाना जाता है। दूरदर्शक यंत्र के माध्यम से दस करोड़ से अधिक नीहारिकाओं का ज्ञान वैज्ञानिकों को प्राप्त हुआ है। आकाश में छोटी-बड़ी अर्थात् सभी प्रकार की नीहारिकाएँ दिखाई देती हैं। जो नीहारिकाएँ ग्रहों के सदृश गोलाकार होती हैं उन्हें ग्रहीय नीहारिका कहते हैं। इन नीहारिकाओं का व्यास प्रायः 7 खरब मील के आसन्न होता है। इनके मध्य में एक प्रचंड तेज से युक्त तारा होता है। उसी के चारों तरफ अन्य लघु तारे भ्रमण करते हैं। इनका एक चक्र भ्रमण लगभग पाँच हजार वर्षों में पूर्ण होता है। कुछ नीहारिकाएँ तो इतनी विशाल होती हैं कि उनकी तुलना आकाशगंगा से की जा सकती है। अधिकतर नीहारिकाएँ समुदाय में रहती हैं। इन्हीं को नीहारिका पुंज



चित्र 3 3,000 प्रकाश वर्ष दूर, स्थित बिल्ली की आँख की तरह दिखने वाली 'कैट्स आई'' नाम की नीहारिका।

कहते हैं। इन पुंजों में 2 से 5 सौ तक नीहारिकाएँ होती हैं। निरन्तर वेध करने से ज्ञात हुआ कि नीहारिकाएँ अधिक वेग से भागती हैं। जैसे-जैसे ये भागती हैं तो इनकी गतियाँ बढ़ जाती हैं। नीहारिकाओं का प्रकाश हम तक एक करोड़ वर्ष के पश्चात् पहुँचता है। लेकिन ये नीहारिकाएँ भी 900 मील प्रति सेकेंड की गति से दूर भाग रही हैं। जिन नीहारिकाओं का प्रकाश हम तक पाँच करोड़ वर्षों में पहुँचता है वे हमसे 4500 मील प्रति सेकेण्ड के वेग से दूर भाग रही हैं। इसी आधार पर कह सकते हैं कि एक अरब चालीस करोड़ वर्षों में विश्व का व्यास दुगुना हो जाएगा।



चित्र 4

नीहारिकाओं के सन्दर्भ में पौराणिक एवं वैदिक साहित्य में चतुर्दश लोगों की व्याख्या करते हुए एक वर्णन मिलता है जिसमें यह कहा गया है कि भूलोक स्वर्लोक से आबद्ध है। इस आबद्धता को यह कहते हुए स्वीकार किया गया है कि स्वर्लोक के अस्तित्व के कारण ही भूलोक का अस्तित्व है, क्योंकि स्वर्लोक की आकर्षण-शक्ति के कारण ही भूलोक स्वर्लोक की परिक्रमा करता है। यहाँ स्वर्लोक को सूर्य लोक कहा गया है। कह सकते हैं कि भूलोक (पृथ्वी) सूर्य के चारों तरफ घूमती है परन्तु स्वर्लोक (सूर्यमण्डल)

पूर्णरूप से परमेष्ठीमण्डल के आकर्षण के कारण अपनी कक्षा में घूमते हुए पूरे सौर-परिवार के साथ आकाशगंगा की परिक्रमा कर रहा है। वैदिक एवं पौराणिक साहित्य के आधार पर महामहोपाध्याय गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी जी स्पष्ट व्याख्या करते हुए कहते हैं[1] कि 'भूलोक स्वर्लोक से, स्वर्लोक जनलोक से और जनलोक सत्यलोक से आबद्ध है। इन लोकों के मध्य में जो अन्तराल है वही क्रमशः भुव-मह-तप लोक कहे गए हैं। *शुक्ल यजुर्वेद* में परमेष्ठीलोक का धाता नाम से भी व्यवहार मिलता है। प्राचीन वैदिक आचार्य स्वीकार करते हैं कि सभी ग्रह, नक्षत्र, तारों की उत्पत्ति परमेष्ठी-लोक से हुई है। आधुनिक वैज्ञानिक इसी परमेष्ठी (धाता) लोक को 'स्पायरल नौबुला' (काश्यपी नीहारिका) के रूप में स्वीकार करते हैं तथा मानते हैं कि सूर्य सहित सभी ग्रहों की उत्पत्ति आकाशगंगा के एक पार्श्व में स्थित काश्यपी नीहारिका से हुई है। इस मत का प्रतिपादन पुराण भी करते हैं। *ब्रह्माण्ड पुराण* में कहा गया है कि **''चन्द्र ऋक्षः ग्रहाः सर्वे विज्ञेयाः सूर्य सम्भवाः''**[2]। इसी सन्दर्भ में *ऋग्वेद* में वर्णन मिलता है कि काश्यपी नीहारिका से ही सूर्य की उत्पत्ति हुई यथा **''काश्यपादेव सूर्योत्पत्तिः''**। आज विज्ञान इस सन्दर्भ में नूतन अनुसन्धान के क्षेत्र में कटिबद्ध रूप में संलग्न है, अर्थात् नीहारिकाओं की खोज निरन्तर चल रही है।

3. तारे एवं तारापुंज

हम रात्रि में तारों से भरे आकाश को देखते हैं। इनमें से कुछ बड़े, कुछ छोटे, कुछ पीले, कुछ नीले दिखाई देते हैं। आकाशगंगा का लगभग 98% भाग तारों से बना है, शेष 2% भाग में खगोलीय गैस और बहुत ही अधिक घने रूप में छाई धूल है। खगोल में ऐसे तारे अपवाद रूप में हैं जो अलग-थलग अकेले पड़े हों। ऐसे तारों की संख्या 25 प्रतिशत से अधिक नहीं है। युग्म तारे खगोल में लगभग 33% हैं, शेष सभी प्रकार के तारे बहुसंख्यक हैं। इन समस्त तारों का वर्गीकरण इनकी द्युति, वर्ग, ताप एवं स्वरूप आदि

1. वैदिक विज्ञान एवं भारतीय संस्कृति पृ. 102
2. ब्रह्माण्ड पुराण 24।46

का ज्ञान भौतिक लक्षणों के द्वारा प्राप्त होता है। तारों में कोई अधिक तीव्र प्रकाश वाला तथा कोई मन्द प्रकाश वाला दिखाई देता है। इसी को तारों का कान्तिमान कहते हैं। मुख्यतः कान्तिमान के द्वारा ही भौतिकशास्त्र में तारों का अध्ययन होता है।

हमारी आकाशगंगा में कितने तारे हैं, इसका अनुमान करना प्रायः कठिन है तथापि कह सकते हैं कि हमारी आकाशगंगा में लगभग एक खरब तारे हैं। इससे कुछ अनुमान कर सकते हैं कि हमारी आकाशगंगा कितनी बड़ी है। हमारी आकाशगंगा का व्यास प्रायः एक लाख प्रकाश वर्ष है। इससे हमें ज्ञात होता है कि प्रकाश की किरणें आकाशगंगा के एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त तक पहुंचने में एक लाख वर्ष समय लेती हैं। जबकि सूर्य की किरणें पृथ्वी तक पहुँचने में आठ मिनट का समय लेती हैं। हमारा सूर्य भी एक तारा है। यह आकाशगंगा के केन्द्र में स्थित न होकर प्रायः केन्द्र से तीस हजार प्रकाश वर्ष दूर किनारे पर स्थित है। यह अपने परिवार के साथ आकाशगंगा में 43 हजार मील प्रति घंटे की गति से भ्रमण कर रहा है। एक अन्य प्रसंग में खगोलशास्त्रियों का अनुमान है कि हमारा सूर्य 220 किमी. प्रति सेकेंड की गति से आकाशगंगा की परिक्रमा कर रहा है। यह परिक्रमा सूर्य लगभग 25 करोड़ वर्षों में पूर्ण करता है। खगोलविदों का अनुमान है कि हमारी पृथ्वी प्रायः एक हजार करोड़ वर्षों में अस्तित्व में आई। अतः कह सकते हैं कि अभी तक हमारी पृथ्वी ने सूर्य के परिवार के सदस्य के रूप में आकाशगंगा के मात्र 40 ही चक्कर लगाए हैं। आकाशगंगा में तारों का बिखराव सब जगह समान रूप से नहीं है। कहीं तारे गुच्छों के रूप तथा कहीं अलग-अलग तारापुंजों के रूप में दिखाई देते हैं। इन तारागुच्छों में हजारों तारे होते हैं। कुछ तारा गुच्छ खुले हुए तथा कुछ तारा गुच्छ गोलाकार होते हैं। आधुनिक खगोलविदों ने प्रायः तीन सौ गोलाकार तारागुच्छों की और करीब डेढ़ हजार बिखरे हुए तारापुंजों की खोज की है। इनमें भी गोलाकार तारागुच्छ अधिक पुरातन एवं खुले बिखरे हुए तारापुंज नवीन लगते हैं। खगोलशास्त्री यह भी अनुमान करते हैं कि खुले हुए तारे या तारे गुच्छ गोलाकार तारागुच्छाकृति की ओर गतिमान हैं।

तारों की उत्पत्ति एवं विनाश

तारों की उत्पत्ति आकाशगंगा में विद्यमान हाइड्रोजन एवं हीलियम गैसों के संगठन से होती है। अन्ततः इन दोनों गैसों की सघनता लघु मेघों के रूप में परिणत होती हैं। हम जानते हैं कि आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से सारे पदार्थ प्रायः 209 मूल तत्वों से बने हैं। जो मूल तत्त्व हमारी पृथ्वी पर पाए जाते हैं वे तारों एवं मन्दाकिनियों में भी पाए जाते हैं। विश्व द्रव्य में हाइड्रोजन एवं हीलियम गैसों की प्रधानता है। पृथ्वी के वायुमण्डल से ये हल्की गैसें काफी पहले उड़ गई हैं। अतः पृथ्वी पर आज भारी तत्त्व कुछ अधिक मात्रा में पाए जाते हैं। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की द्रव्यराशि में हाइड्रोजन की मात्रा सर्वाधिक है। तारों का द्रव्य जिन मूल तत्त्वों से बना है उनमें 83.9 प्रतिशत हाइड्रोजन एवं 15.9 प्रतिशत हीलियम गैसें हैं। शेष सभी तत्त्वों के प्रमाणों की मात्रा 0.2 प्रतिशत सम्मिलित रूप में है। हाइड्रोजन तारों का ईंधन है। हाइड्रोजन के परमाणुओं का संगठन होकर जब यह हीलियम में रूपान्तरित होती है तो तब ताप नाभिकीय भीषणतम ऊर्जा का उत्सर्जन होता है। इन्हीं दो गैसों की संघटनता—जो मेघों के रूप में परिवर्तित होती है, के आकार बढ़ने के अनन्तर उनमें गुरुत्वाकर्षण के कारण निपात होता है। हाइड्रोजन, हीलियम गैसों का सम्मिश्रण होकर सम्मिश्रित मेघों का तापमान 173 डिग्री सेंटीग्रेड होता है। गुरुत्वाकर्षण के कारण ये गैसीय विशाल मेघखंड उत्तरोत्तर संकुचित एवं घनीभूत होकर तारों का रूप धारण करते हैं। यह प्रक्रिया प्रायः एक अरब वर्ष तक चलती है। इस अवस्था में तारों का तापमान 173 डिग्री सेंटीग्रेड से आरम्भ होकर एक करोड़ सेंटीग्रेड तक होता है। धीरे-धीरे गैसीय पिण्ड का आन्तरिक तापमान और घनत्व बढ़ता जाता है। परिणामतः यह पिण्ड प्रज्ज्वलित होकर सम्पूर्ण तारे का रूप धारण कर लेता है। तारों के आन्तरिक प्रभाव में वृद्धि होने से गैसीय पदार्थों का निपात अवरुद्ध हो जाता है। इस स्थिति में तारों में विरुद्धधर्मी दो वलयों के मध्य ऐसा सामंजस्य होता है कि पहला वलय गर्भ की ओर संकुचित होता है और दूसरा वलय परिधि की ओर फैलता है, जैसे इस समय हमारा सूर्य सन्तुलित अवस्था में है। हमारे सूर्य की उत्पत्ति प्रायः 46 अरब वर्ष पहले हुई है। अभी हमारा सूर्य अपनी कुमारावस्था में आगे बढ़ रहा है। भविष्य में भी ऊर्जा का विमोचन

अपने यथाक्रम प्रमाण से ही करेगा। तारों के मध्य भाग जिसको हम क्रोड भी कहते हैं, के संकुचित होने से आवरण का तथा विकसित होने से विकृत ऊर्जा का प्रभाव न्यून होता है। आवरण के क्षेत्रफल के बढ़ने से तारे रक्तदानव अवस्था में प्रवेश करते हैं। उस समय तारों का स्वरूप लाल होता है। आज से पाँच हजार अरब वर्षों के बाद हमारा सूर्य भी रक्तदानव अवस्था में होगा। उस समय सूर्य की बाहरी परिधि का प्रसारण बुध, शुक्र, पृथ्वी की कक्षा से बाहर तक होगा। मंगल की कक्षा भी प्रभावित होगी। तब इन ग्रहों का अस्तित्व भी नष्ट हो जाएगा। हो सकता है कि पृथ्वी मात्र दग्ध हो अर्थात् कह सकते हैं कि पृथ्वी की जैविक सृष्टि तो पूर्ण नष्ट हो जाएगी। जिन तारों का द्रव्यमान सूर्य के समान होता है उन तारों की अन्तिम परिणति श्वेतवामन के रूप में होती है। यदि सूर्य की तुलना में तारे का द्रव्यमान अधिक हो तो उस तारे का अन्त रोचक हो सकता है। प्रायः इस प्रकार के तारों का क्रोड भाग अधिक संकुचित होता चला जाता है तथा इस संकुचन क्रिया से तापमान उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है तथा बाहरी कवच में संकुचित ऊर्जा के कारण विस्फोट होता है। इसी विस्फोट को खगोलशास्त्रियों ने 'सुपरनोवा विस्फोट' की संज्ञा दी है। सुपरनोवा विस्फोट के बाद क्रोड भाग अत्यधिक सम्पीडित होकर अपरिमित घनत्व को प्राप्त होता है। अत्यधिक संघनित द्रव्य का यह पिण्ड 'न्यूट्रान तारा' कहलाता है। घूमते हुए यह तारा रेडियो तरंगों को उत्पादित करता है। इसी को आधुनिक खगोलशास्त्री 'पल्सार' के नाम से जानते हैं। हमारी आकाशगंगा में अभी तक पाँच ही 'सुपरनोवा' विस्फोट खोजे गए हैं। वैज्ञानिकों का तर्क है कि सुपरनोवा की घटनाएँ हमारी आकाशगंगा में प्रति शताब्दी दो या तीन तक हुआ करती हैं। अच्छी दूरबीनों द्वारा अन्य आकाशगंगाओं के तारों में विस्फोट देखा जा सकता है। अभी तक देखे गए ऐसे विस्फोटों की संख्या 500 से अधिक है। हाल ही में सन् 1987 में आकाशगंगा के निकट हमपड़ोसी मैजेलन के बड़े मेघ में एक 'सुपर नोवा' देखा गया था। सैंडुलीक नामक नीले महादानवी तारे के विस्फोट से यह घटना घटी और इसका निरीक्षण वैज्ञानिक अभी तक करते रहते हैं। इसके खोज की एक रोचक घटना है। 23 फरवरी 1987 की रात में 2 बजे की बात होगी। चिली की लास कंपानास वेधशाला में

'इयन शेल्टन' थकने के कारण अब निरीक्षण कार्य समाप्त करके घर जाने की जल्दी में थे। उन्होंने सोचा, जाने से पहले आकाश दर्शन की अपनी फोटोग्राफिक प्लेट को देखूँ जो अभी-अभी तैयार होकर आई है। शेल्टन ने प्लेट पर नजर डाली तो एक चमकदार अन्य धुंधले तारों के बीच एक तारा दिखाई दिया। यह तारा कहाँ से दिखाई दिया अथवा कहाँ से आया। कहीं मेरी फोटोग्राफी में त्रुटि तो नहीं हैं। शेलटन ने वेधशाला के बाहर आकर देखा तो सचमुच एक चमकदार तारा वहाँ पर दिखाई दे रहा है जहाँ दूरबीन से दिखाई दिया था। इसके पश्चात् इसका नाम शेल्टन सुपरनोवा या सुपरनोवा 1987 A कहा गया। यह हमसे लगभग 1,70,000 प्रकाश वर्ष दूर है। कह सकते हैं कि जो विस्फोट शेल्टन ने 23 फरवरी 1987 को देखा वह वास्तव में 1,70,000 वर्ष पहले हुआ था। बाद में पता चला कि यहाँ सैंडुलीक तारा था जो अब नहीं रहा।

यदि किसी तारे का द्रव्यमान सूर्य के द्रव्यमान से 2.5 गुणा से अधिक हो तो वह तारा श्वेतवामन या न्यूट्रान तारा नहीं बनेगा बल्कि उसकी परिणति कुछ और ही तरह की होती है। ब्रह्माण्ड में कुछ ऐसे तारे मौजूद हैं जो इतने घने एवं आकुंचित हैं कि इनकी सतह पर मुक्ति वेग (पलायन वेग) प्रकाश के वेग से अधिक है। अतः प्रकाश किरणें उनकी सतह से बाहर नहीं जा सकती हैं, तो वे हमें नहीं दिखाई देंगे। ऐसे ही तारों को ब्लैक होल या कृष्ण विवर कहते हैं। ब्लैक होल के रूप में परिणत वे तारे होते हैं जो इतने भारी हैं कि उनका संकुचन श्वेतबटु (श्वेतवामन) या न्यूट्रान तारे के रूप में नहीं हो सकता है। यह स्थिति तब पैदा हो सकती है जब सुपरनोवा का बचा हुआ गर्म भाग सूर्य की मात्रा के दुगुने से काफी अधिक हो। ऐसे तारे के आकुंचन को कोई शक्ति रोक नहीं सकती और वह संकुचित होते-होते अन्त में कृष्ण विवर (ब्लैक होल) बन जाता है। उदाहरणस्वरूप कह सकते हैं कि जिस तारे का द्रव्यमान सूर्य के द्रव्यमान से 2.5 गुने से अधिक होता है वही कृष्ण विवर बनेगा तथा इस कृष्ण विवर का व्यासमान 20 किमी. से कम होगा। अतः अन्त में सारांश रूप में कह सकते हैं कि जिन तारों का द्रव्यमान सूर्य के समान या कुछ कम होता है उनकी अन्तिम परिणति श्वेतवामन के रूप में होती है। जिनका द्रव्यमान कुछ अधिक परन्तु

सूर्य के दुगुने द्रव्यमान से कम हो तो ऐसे तारों की परिणति सुपरनोवा के रूप में होती है। जिनका द्रव्यमान सूर्य के द्रव्यमान से 2.5 गुने से अधिक हो तो उनकी परिणति ब्लैक होल के रूप में होती है। ये अवस्थाएँ तारों की अंतिम अवस्थाएँ होती हैं।

तारों का तापमान

वर्ण विश्लेषण यंत्र से, सवर्ण शोधक उपाय से एवं फोटो चित्रों से, तारों के वर्णों का ज्ञान होता है। वर्ण ही उनके पृष्ठीयताप के सूचक हैं। वर्ण भेद की दृष्टि से ओ, बी, ए, एफ, जी, के, एम, आर, एन, एस तारों के भेद स्वीकृत हैं। ये आंग्लभाषा के अक्षर क्रमशः न्यूनतम ताप के द्योतक हैं। जैसे 'ओ' नामक तारे का पृष्ठीय तापमान सर्वाधिक 50000 सेंटीग्रेड से 100000 डिग्री सें. ग्रे. तक होता है। 'बी' वर्ग के तारों का पृष्ठीय तापमान 15000 डिग्री सें. ग्रे. से अधिक होता है। 'ए' वर्ग के तारों का पृष्ठीय तापमान 11000 डिग्री सें. ग्रे. के आसपास रहता है। 'एफ' वर्ग के तारों का पृष्ठीय तापमान 1500 डिग्री सें. ग्रे. के आसपास होता है। वर्तमान ध्रुवतारा इसी वर्ग का तारा है। 'जी' वर्ग के तारों का पृष्ठीय तापमान 6000 डिग्री सें. ग्रे. के आसपास होता है। हमारा सूर्य इसी वर्ग का तारा है। 'के' वर्ग के तारों का पृष्ठीय तापमान 4500 डिग्री सें. ग्रे. के आसन् होता है। हमारे रोहिणी और स्वाती नक्षत्र इसी वर्ग में आते हैं। 'एम' वर्ग के तारे लाल वर्ण के होते हैं, इनका पृष्ठीय (सतह) तापमान 3500 डिग्री सें. ग्रे. के आसन्न (आसपास) होता है। आर्द्रा और ज्येष्ठा नक्षत्र इसी वर्ग में आते हैं। आकाशगंगा में इनसे भी कम पृष्ठीय तापमान वाले तारे हैं। जैसे 'एन' वर्ग के तारे का पृष्ठीय तापमान 3000 डिग्री सें. ग्रे. से भी कम रहता है। कुछ तारे ऐसे भी खोजे गए जिन्हें 'शीतल' तारा कहा गया क्योंकि अन्यों की अपेक्षा इनका पृष्ठीय तापमान काफी न्यून होता है। 'एस' वर्ग में ये तारे आते हैं। इनका पृष्ठीय तापमान 800 डिग्री सें. ग्रे. के आसपास होता है।

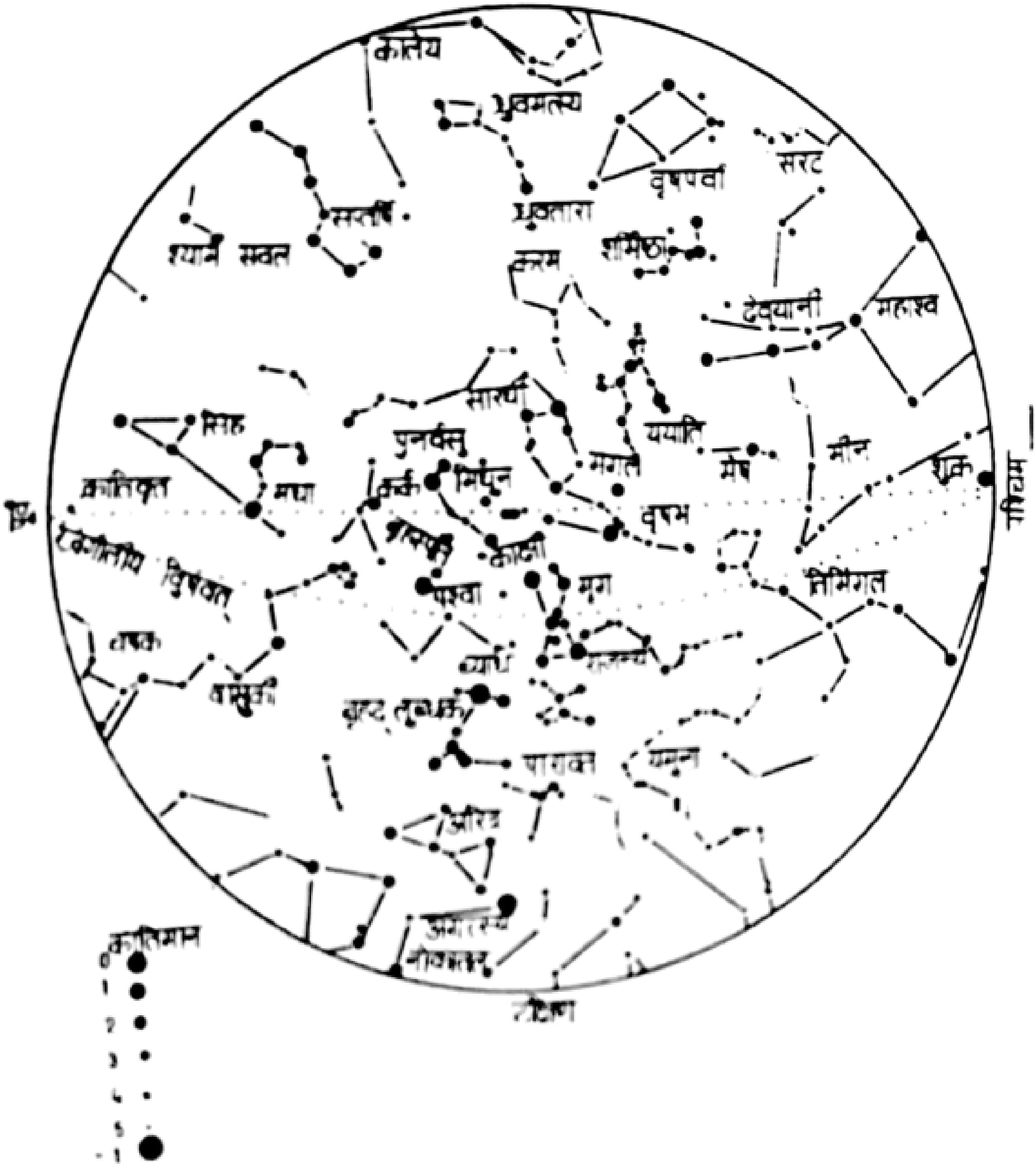
आकाशगंगा के तारों को उपर्युक्त वर्णक्रम में बाँटा गया है। इनसे भी न्यून पृष्ठीय तापमान वाले तारे पाए जाते हैं। सूक्ष्मता के लिए खगोल-शास्त्रियों ने प्रत्येक वर्ग के तारों को पुनः 10 उपवर्गों में बाँटा है। सम्प्रति

इन उपवर्गों को G1, G2, G3, G4, G5, G6, G7, G8, G9, G10 के रूप में दर्शाया जाता है। वास्तविक रूप में खगोलशास्त्रियों ने हमारे सूर्य को G2 वर्ग का तारा कहा है। यह रही तारों के पृष्ठीय तापमान की बात, परन्तु तारों का गर्भीय तापमान प्रायः 20000000° सें. ग्रे. के तुल्य होता है। तारों के तापक्रम बढ़ने के साथ-साथ वर्णक्रम क्रमशः पीला, श्वेत नीला आदि होता जाता है। अत्यधिक तप्त तारे नीले वर्ण में दिखाई देते हैं। सरल रूप से हम निम्न प्रकार से भी तारों के वर्ण को समझ सकते हैं–

वर्ण	तापमान
लाल	प्रायः 3000 डिग्री सें. ग्रे. तक के तारे
नारंगी	3000 डिग्री सें. ग्रे. से 5000 डिग्री सें. ग्रे. तक के तारे
पीला	5000 डिग्री सें. ग्रे. से 6000 डिग्री सें. ग्रे. तक के तारे
श्वेत पीले	6000 डिग्री सें. ग्रे. से 8000 डिग्री सें. ग्रे. तक के तारे
श्वेत	8000 डिग्री सें. ग्रे. से 10000 डिग्री सें. ग्रे. तक तारे
नीले श्वेत	15000 डिग्री सें. ग्रे. से अधिक के तारे
नीले	25000 डिग्री सें. ग्रे. अधिक के तारे

तेजस्विता के आधार पर तारों की सूची संलग्न हैं। सारणी में व्याध नामक तारे का आभासिक कान्तिमान 1.43 है। केवल आरम्भ से चार तारों का आभासिक कान्तिमान ऋणात्मक है। इस सारणी में जैसे-जैसे तारों की द्युतिता न्यून होती है वैसे-वैसे तारों का कान्तिमान अधिकाधिक धनात्मक होता है। स्पष्टता के लिए सारणी देखेंगे। सारिणी में प्रायः मुख्य एवं बहुत कम तारों को दिया गया हैं। इस सारणी में सूर्य (तारा) को नहीं दर्शाया गया है। सूर्य का कान्तिमान इतना कम है कि इस कान्तिमान के कोई भी तारे नहीं दिए गए हैं। जैसा कि हम पहले बता चुके हैं कि आकाशीय कान्तिमान बढ़ते क्रम में है अर्थात् जिन तारों का कान्तिमान अधिक है वे ऋण में दिखाए गए हैं। उत्तरोत्तर जिनका कान्तिमान कम होता गया उनको धन में दर्शाया गया है। हमारे सूर्य का कान्तिमान + 4.7 है। यह G2 वर्णक्रम का तारा है। इससे भी कम कान्तिमान वाले तारे को + 10.0, + 15.0 आदि क्रम में दिखाया जा सकता है। तेजस्वी तारों की एक छोटी सूची–

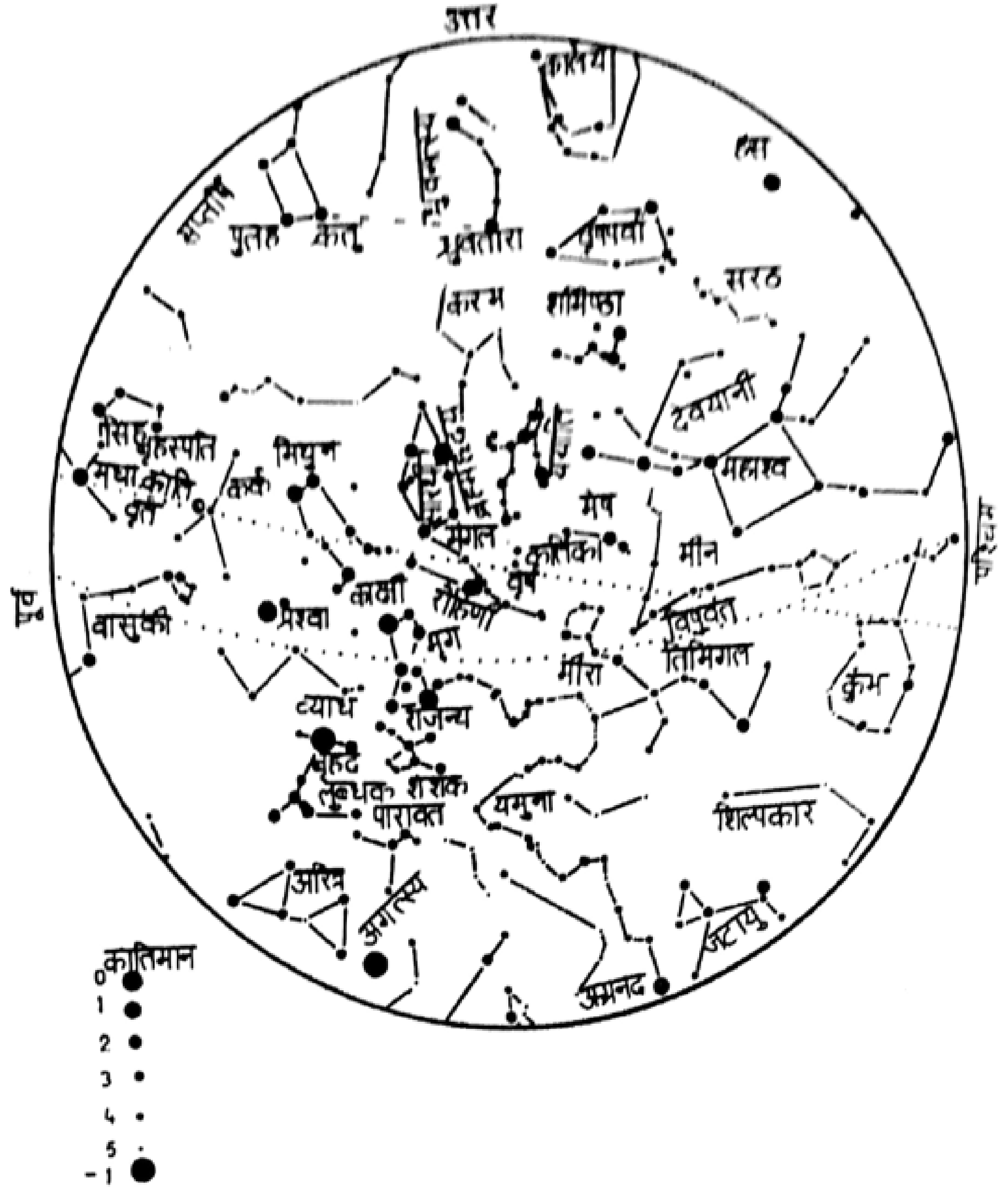
क्रम सं.	भारतीय नाम	पाश्चात्य नाम	वर्णक्रम श्रेणी	आभासीय कान्तिमान	दैर्घ्यमान प्रकाश वर्षों में	परम कन्ति-मान
1.	2.	3.	4.	5.	6.	7.
1.	व्याध	सिरियस	ए-1 पंचम	-1.43	8.7	+ 1.5
2.	अगस्त्य	कैनोपस	एफ θ प्रथम ए	-0.73	1174	-4.4
3.	मित्रम्	एल्फोसेन्टॉरी	जी 2 पंचम	-0.27	4.3	+ 4.1
4.	स्वाति	आर्कट्यरस	के 2 तृतीय	-0.06	36	-0.3
5.	अभिजित्	वीगा	ए θ पंचम	+ 0.04	26	+ 0.05
6.	ब्रह्महृदय	कैपेला	(जी θ)	+ 0.09	42	-0.06
7.	राजन्य	रिगल	बी 8 प्रथम ए	+ 0.15	900	-6.4
8.	प्रश्वा	प्रोसिऑन	एफ 5 चतुर्थ पंचम	+ 0.37	11.3	+ 2.7
9.	अग्रनद	एशर्नार	बी 3 पंचम	+ 0.53	85	-2.7
10.	मित्रक	बीटासेण्टॉरी (हडर)	बी θ 5 पंचम	0.66	456	-3.3
11.	काशी	बीटलज्यूस	एम 2 प्रथम ए बी	+ 0.7	310	-2.9
12.	श्रवण	अलटेयर	ए 7 चतुर्थ पंचम	+ 0.80	16.6	+ 2.3
13.	रोहिणी	एल्डेबेरान	के 5 तृतीय	+ 0.85	68	-0.7
14.	—	एल्फाक्रूसिस (एक्रक्स)	बी θ.5 पंचम	+ 0.87	359	-3.2
15.	ज्येष्ठा	एण्टेरिज	एम 1 प्रथम बी	+ 0.98	326	-2.6
16.	चित्रा	स्पाइका	बी 1 पंचम	+ 1.00	258	-2.4
17.	मीनास्य	फोमैल्हॉट	ए 3 पंचम	+ 1.16	22	+ 2.0
18.	पुनर्वसु	पोलक्स	के θ तृतीय	+ 1.16	36	+ 1.0
19.	हंस	डैनेव	ए 2 प्रथम ए	+ 1.26	1826	-4.8
20.	—	वीटा क्रूसिस	बी θ.5 चतुर्थ	+ 1.31	424	-3.5
21.	मघा	रैगुलस	वी 7 पंचम	+ 1.36	84	-0.7
22.	—	अढर	बी 2 द्वितीय	+ 1.49	489	- 3.0
23.	पुनर्वसु	कैस्टर	(ए θ)	+ 1.59	46	+ 1.0
24.	मूल	शोला	बी 2 चतुर्थ	+ 1.62	274	-1.3
25.	—	वैलाट्रिक्स	बी 2 तृतीय	+ 1.64	359	-1.3



चित्र 5 (A)

4. सौर-परिवार

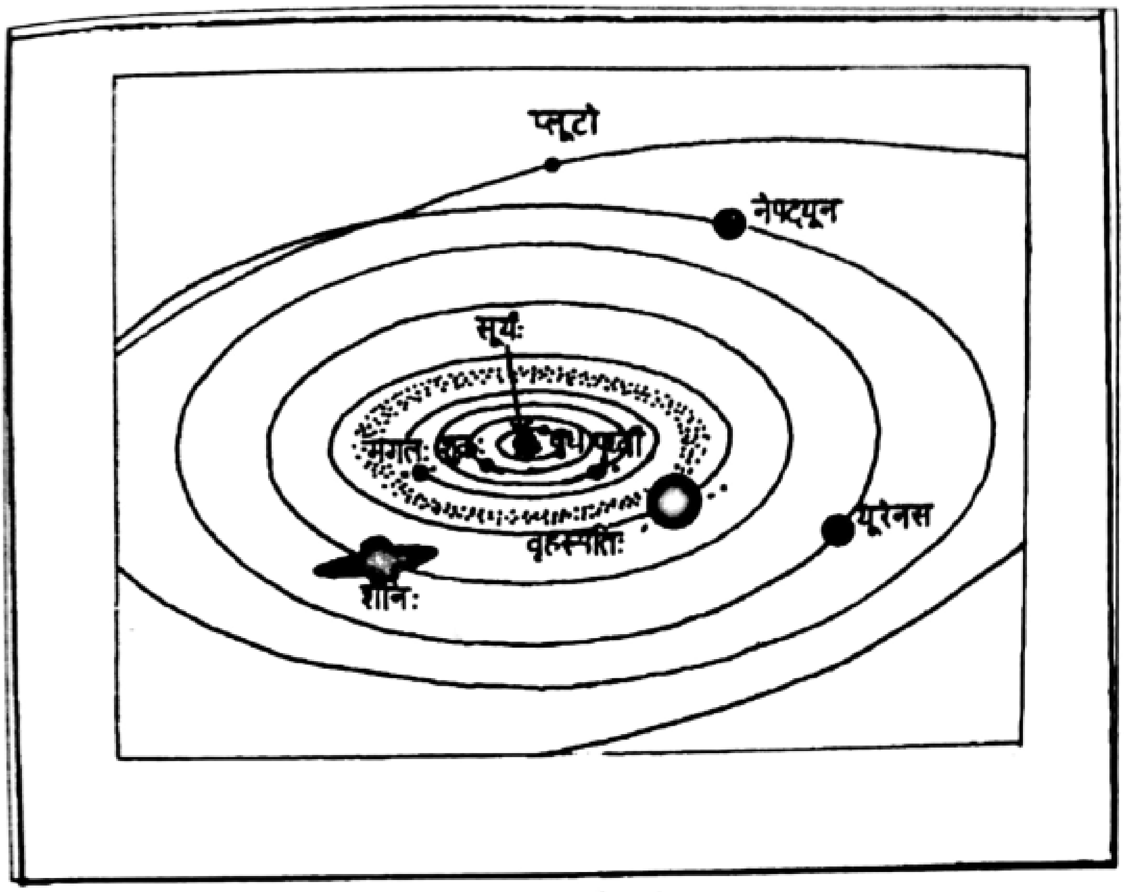
सूर्य का परिवार ही सौर-परिवार कहा जाता है। इसी को सौरमण्डल भी कहते हैं। इस ब्रह्माण्ड में असंख्य सूर्य हैं तथा असंख्य ही सौर-परिवार भी विद्यमान हैं। इन सारे सौर-परिवारों में हमारा सौर-परिवार अलग तरह का है क्योंकि अभी तक जीवन हमारे ही सौर-परिवार में दिखाई देता है। ऐसा नहीं कि अन्य सौर-परिवार जीवनविहीन हैं परन्तु अभी तक ऐसे अन्य सौर-परिवार का अन्वेषण नहीं हुआ जिसमें जीवन हो। अवश्य निकट भविष्य में हमारे सौर-परिवार का साथी खोज निकलेगा। इस प्रक्रिया में वैज्ञानिक



चित्र 5 (B)

सतत प्रयत्नशील हैं। प्रत्येक सौर-परिवार का संचालक उसका सूर्य (तारा) होता है। हमारा सूर्य नौ ग्रहों के परिवार का मुखिया है। ये ग्रह हैं—बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनि, यूरेनस, नेप्च्यून और प्लूटो। इन ग्रहों के कम-से-कम 65 उपग्रह, सैकड़ों क्षुद्रग्रह हैं। सूर्य के ही परिवार में धूमकेतुओं और उल्कापिंडों को भी माना जाता है।

हमारी आकाशगंगा के केन्द्र से प्रायः 30000 से लेकर 33000 प्रकाश वर्ष दूर एक कोने में हमारा सौर-परिवार स्थित है। गैस और धूल (अन्तरिक्ष



चित्र 6 हमारा सौर-परिवार

धूल) की घूमने वाली पट्टी, जिसे आदि सौर नीहारिका भी कह सकते हैं, से इसका जन्म हुआ। इसी घूमने वाली पट्टी से ग्रहमण्डल के सभी सदस्यों की उत्पत्ति हुई। ग्रहों के लिए प्रयुक्त अंग्रेजी शब्द 'प्लैनेट' ग्रीक शब्द 'प्लेनेटेस' से निकला है। इसका अर्थ होता है घुमक्कड या यायावर। आकाश में हमेशा स्थिर दिखाई देने वाले तारों से अलग ये ग्रह अपनी स्थिति बदलते रहते हैं इसीलिए इन्हें 'प्लेनेट' या घुमक्कड़ कहा जाता है। ग्रहों का विभाजन आन्तरिक एवं बाह्य ग्रहों के रूप में किया गया है। बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल को आन्तरिक ग्रह तथा बृहस्पति, शनि, यूरेनस, नेप्च्यून और प्लूटो बाह्य ग्रह हैं। पृथ्वी आन्तरिक ग्रहों में सबसे बड़ी और घनी है। सभी आन्तरिक ग्रह घने चट्टानों से बने हैं और इन्हें पार्थिव ग्रह कहा जाता है क्योंकि ये पृथ्वी के समान हैं। आन्तरिक ग्रहों में मात्र पृथ्वी और मंगल के ही उपग्रह हैं। बाह्य ग्रहों का एक बड़ा उपग्रहीय परिवार भी है। ये प्रायः हाइड्रोजन और हीलियम गैस से बने हैं। इनको बार्हस्पत्य या जोवियन कहते हैं क्योंकि ये सभी ग्रह प्रायः बृहस्पति के ही समान हैं। जोव ग्रीक भाषा बृहस्पति

को ही सूचित करता है। भारत में इसे गुरु कहा गया है सौर-परिवार में सबसे भारी गुरुत्व बल वाला ग्रह यही है इसलिए इसे गुरु कहा गया। सभी बाह्य ग्रह तीव्र गति से घूमते हैं। इनका घना वातावरण भी है। ये आन्तरिक ग्रहों की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म तत्वों से बने हैं। बाह्य ग्रहों में से प्लूटो अपने आप में इनसे कुछ भिन्न है क्योंकि यह आन्तरिक ग्रहों की तरह घना समझा जाता है। ये सारे ग्रह सूर्य की परिक्रमा दीर्घवृत्ताकार कक्षा में करते हैं जिसकी अवधारणा पूर्व काल में हमारे आचार्यों ने ग्रहों के उच्च और नीच को प्रदर्शित करते हुए की थी।

सौर-परिवार की उत्पत्ति

सौर-परिवार की उत्पत्ति ही नहीं अपितु ब्रह्माण्ड के सभी पदार्थों की उत्पत्ति 'हिरण्याण्ड' से ही हुई। इस सन्दर्भ में *शतपथ ब्राह्मण* कहता है कि–**आपो ह वा इदमग्रे सलिलमेवास। ता अकामयन्त कथं नु प्रजायेमहि इति। ता अश्राम्यन् तास्तपोऽयतप्यन्त। तासु तपस्तप्यमानासु हिरण्यांडं सम्बभूव। तदिदं यावत् संवत्सरस्य वेला, तावत् पर्यप्लव, ततः संवत्सरे पुरुषः सम्भवत्। सः प्रजापतिः।**[1] अर्थात् 'आपः' निश्चय ही आरम्भ में सलिलावस्था में ही था। इसमें स्वयंभू ब्रह्म द्वारा कामना हुई कैसे हम प्रजारूप फैलें। उन्होंने श्रम किया। उन्होंने तप तपा। उन तपती हुई आपों में हिरण्याण्ड उत्पन्न हुआ। यह हिरण्याण्ड एक वर्ष तक परिप्लव (चक्र में तैरना) करता रहा। तब संवत्सर बीत जाने पर पुरुष प्रकट हुआ। इस वचन में हिरण्यगर्भ की पर्यप्लवन रूपी गति का स्पष्ट निर्देश मिलता है। हिरण्याण्ड संवत्सर पर्यन्त तैरता रहा। यह काल गणना किन नियमों पर आधारित थी, एक ज्ञातव्य विषय है। कह सकते हैं कि ब्रह्म के संवत्सर पर्यन्त वह तैरता रहा। इस तरह का वर्णन *वायुपुराण* में भी मिलता है। यथा–

अन्तस्तस्मिंस्त्विमे लोका अन्तर्विश्वमिदं जगत्।
चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रौ सग्रहौ सह वायुना।।

1. श. ब्रा. 11।1।6।1-2

लोकालोकं च यत्किंचिच्चाण्डे तस्मिन् समर्पितम्।
आपोर्दशगुणाभिस्तु बाह्यतोऽण्डं समावृतम्।।[1]

अर्थात्—अन्दर उसके ये लोक, अन्दर सम्पूर्ण जगत्, चन्द्र, आदित्य, नक्षत्र, ग्रह, वायु के साथ उसमें थे। प्रकाश और अन्धकार से युक्त जो कुछ था, उस अण्ड में था। आपों से जो दश गुणा थे, बाहर से अण्ड आवृत था। क्या यह महद् अण्ड एक ही था? क्या उस एक ही अण्डे से अनगिनत सूर्य, चन्द्र, ग्रह, तारे आदि उत्पन्न हुए? क्या सम्पूर्ण सृष्टि एक ही प्रजापति से उत्पन्न हुई? इन सभी प्रश्नों का उत्तर *विष्णुपुराण* में उपलब्ध होता है। यथा—

अण्डानां तु सहस्राणां सहस्राण्ययुतानि च।
ईदृशानां तथा तत्र कोटि-कोटि शतानि च।।[2]

अर्थात् सहस्रों (हजारों) अण्डों के हजारों, दश हजारों अण्डे थे। ऐसे अण्डे वहाँ करोड़ों-करोड़ों सौ में थे। पुनः इसी प्रकार का प्रसङ्ग *वायुपराण* में मिलता है। यथा—

अण्डानामीदृशानां तु कोट्यो ज्ञेयाः सहस्रशः।
तिर्यगूर्ध्वमधस्ताच्च कारणस्यायमात्मनः।।[3]

अर्थात् ऐसे अण्डे सहस्रों करोड़ थे। ये तिर्यक, ऊर्ध्व (ऊपर) और अध (नीचे) थे। इन्हीं अंडों का फल ये दूरस्थ सृष्टियाँ (Glaxies) हैं। इस विचार की पुष्टि के लिए पं. भगवद्दत्त महोदय ने अपनी पुस्तक *वेद विद्या निदर्शन* में 'डच' ज्योतिषी का मत उद्धृत किया। यथा—

The total number of stars in galactic system including the most distant and faint ones is estimated by the dutch astronamer Kapteyn, to whom we .... Most careful study of the Milky way to be about 40 billions.[4]

अर्थात् हमारी एक सृष्टि (Galaxy) में तारों की संख्या करोड़ों से भी अधिक है। वस्तुतः करोड़ों अंडों ने करोड़ों सृष्टियाँ (Glaxies) उत्पन्न की। इस प्रकार सिद्ध होता है कि भारतीय चिन्तनधारा के ही अनुरूप वैज्ञानिक चिन्तनधारा भी आगे बढ़ी और विकसित हुई।

---

1. वायु पुराण 4।73-75
2. विष्णुपुराण 2।7।27
3. वायु पुराण 49।151
4. G. Gamaw the birth and death of sun p. 183

वैज्ञानिकों की दृष्टि में सौर-परिवारोत्पत्ति

हमारे सौर-परिवार में दो प्रकार के ग्रह हैं—एक आन्तरिक और दूसरे बाह्य। आन्तरिक ग्रहों का निर्माण गुरु पदार्थों से हुआ है जबकि बाह्य ग्रहों में भारी पदार्थों की मात्रा अधिक नहीं है तथा आन्तरिक ग्रहों की अपेक्षा बाह्य ग्रहों के उपग्रहों की संख्या भी अधिक है। इस सन्दर्भ में वैज्ञानिक भी एक मत नहीं हैं। वैज्ञानिकों के भी दो वर्ग हैं जो दो पृथक्-पृथक् प्रकार से सौर-परिवार की उत्पत्ति मानते हैं, यथा—

(अ) **एकरूपतावादी एकपैतृक परिकल्पना** (Unifarmitacan and Uniparental Hypothesis)—एकपैतृक परिकल्पना के अनुसार सौरमण्डल की उत्पत्ति एक ही बृहद् पिण्ड के मन्दक्रमिक परिक्रमा के विकास से हुई। इस सिद्धान्त में माना गया है कि सौर-परिवार की उत्पत्ति नीहारिका के मन्द क्रमिक परिभ्रमण से हुई। इस एकरूपतावादी परिकल्पना के कुछ विद्वान् एवं मत इस प्रकार हैं—

1. काण्ट महोदय की नीहारिका परिकल्पना।
2. लाप्लास महादेय की नीहारिका परिकल्पना।
3. वाइजेकर की नीहारिका परिकल्पना।
4. अल्फवेन की विद्युत् चुम्बकीय परिकल्पना।
5. कुइवर की नीहारिका परिकल्पना।
6. शिमड् की उल्कापिण्ड परिकल्पना।

अट्ठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में मुख्य रूप से पश्चिमी विद्वानों के अनुसार पृथ्वी एवं अन्य ग्रहों के उद्‌गम की वैज्ञानिक व्याख्या प्रारम्भ होती है। पश्चिमी विद्वानों के अनुसार इस शताब्दी से वैज्ञानिकों ने प्रत्येक परिकल्पना का विवेचन प्रारम्भ किया। खगोल विद्या का विकास मुख्य रूप से मनगढ़न्त कल्पनाओं के लिए अच्छा नहीं रहा। इसका श्रेय सर्वप्रथम जर्मन दार्शनिक काण्ट को जाता है जिन्होंने सन् 1755 में एक पुस्तक लिखी कि—"मुझे पदार्थ दो मैं सृष्टि की रचना कर दूँगा"। इस पुस्तिका में आपने पृथ्वी एवं आकाशीय पिंडों की उत्पत्ति के बारे में लिखा, परन्तु एक दार्शनिक की प्रस्तुत कृति की ओर वैज्ञानिकों का ध्यान 40 वर्ष बाद आकृष्ट हुआ। काण्ट के सिद्धान्त से प्रायः मिलता-जुलता परन्तु गणित की दृष्टि से उससे

कई अच्छा एक नवीन सिद्धान्त प्रसिद्ध फ्रांसीसी खगोलज्ञ और गणितज्ञ लाप्लास (Laplace) ने उपस्थित किया। काण्ट और लाप्लास दोनों ने ही सौर-परिवार की उत्पत्ति नीहारिका सिद्धान्त (नेव्युलर हाईपाथिसिस) के आधार पर की। ये लोग मानते थे कि सूर्य और ग्रहों उपग्रहों की उत्पत्ति एक वृहद् नीहारिका से हुई। यह नीहारिका गैस एवं अति सूक्ष्म विश्व धूल मेघ कणों से बनी है। सूर्य गैस के गोले के रूप में नीहारिका के मध्य में स्थित है। केन्द्राकर्षण शक्ति के कारण यह नीहारिका इसके चारों तरफ घूमती है। नीहारिका में स्थित छोटे-छोटे कणों में संघर्ष होने लगा, जिससे कणों ने सिमट कर छोटी-छोटी नीहारिकाओं का रूप ले लिया। यही नीहारिकाएँ ग्रह और उपग्रह बने। यह सिद्धान्त लगभग 200 वर्ष तक निर्विवाद रहा। इसके पश्चात् इस पर प्रश्न उठने लगे। लाप्लास के नीहारिका परिकल्पना के अनुसार ग्रहों का निर्माण सौरपरिवार के बाहरी भाग से प्रारम्भ होना चाहिए तथा सबसे अंतिम में बुध ग्रह का निर्माण होना चाहिए। लाप्लास के अनुसार ग्रहों के निर्माण करने वाले वलय एक ही समतल धरातल में होंगे। इसलिए ग्रहों की कक्षाओं का झुकाव शून्य होना चाहिए परन्तु ऐसा नहीं है। दूसरी आपत्ति यह कि एक पिंड के चारों तरफ घूमता हुआ दूसरा कोई पिण्ड लें। उसकी दूरी और वेग पर एक साथ विचार करें तो कोणीय वेग प्राप्त हो जाता है। कोणीय वेग का स्थानान्तर तो हो सकता है परन्तु नाश नहीं, यह एक सिद्धान्त है। इसलिए सूर्य और ग्रहों का जो कोणीय संवेग है वह पहले गैस अभ्र (गैसीय) में ही केन्द्रित रहा होगा। इस समय सौर तन्त्र का सारा कोणीय सम्वेग बड़े ग्रहों में ही है, जबकि लाप्लास के अनुसार सूर्य में ही अधिकांश भाग होना चाहिए था।

इस कठिनाई को दूर करने के लिए हम सूर्य के चुम्बकीय क्षेत्र पर विचार कर सकते हैं। स्वीडन के वैज्ञानिक एच. आल्वेन (H. Alfven) का मत है कि ग्रहों की उत्पत्ति के पश्चात् चुम्बकीय बल के कारण सौर-घूर्णन मन्द पड़ गया और कोणीय सम्वेग सूर्य के मूल अभ्र से हट कर अवशिष्ट भाग में स्थानान्तरित हो गया। कुछ विद्वानों के विचारों में ग्रहों, उपग्रहों की रचना उल्काओं एवं उल्का कणों के सम्मीलन से हुई। इस विचारधारा के प्रवर्तकों में बेल्जियम निवासी लिगन्दे एवं श्मिड् महोदयों का नाम प्रमुख है। इसके पश्चात् अब हम प्रलयवादी द्विपैतृक सिद्धान्तों की विवेचना करेंगे।

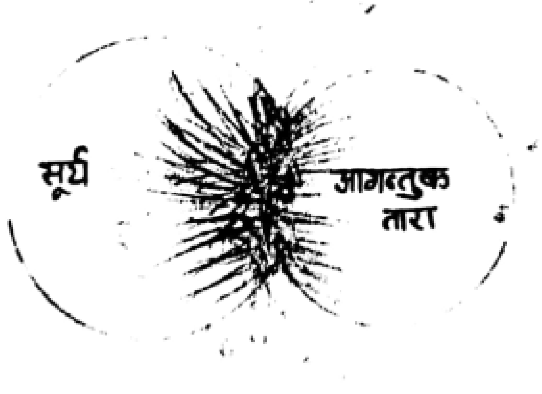
(आ) प्रलयवादी द्विपैतृक परिकल्पना (Cataclysmic fiparental hypothesis)—इस परिकल्पना के अनुसार हमारे सौर-परिवार की उत्पत्ति दो तारों के संघर्ष एवं विस्फोट आदि प्रलयकारी परिणाम से हुई। इस वर्ग में भी विभिन्न वैज्ञानिकों के मत एवं परिकल्पनाएँ निम्नलिखित हैं, इनमें से विशेष मतों की अलग से व्याख्या की गई है—

1. बफन की संघर्षण (भिड़न्त) परिकल्पना।
2. चेम्बरलेन एवं मोल्टन महोदय की ग्रहाणु परिकल्पना।
3. जीन्सजेफ्रीज की ज्वारीय परिकल्पना।
4. रसेल एवं लिटिलिटन की युग्मतारा परिकल्पना।
5. रासगन की विखण्डन परिकल्पना।
6. ए. सी. बनर्जी महोदय की 'सिफीड' परिकल्पना।
7. फ्रेडहायल की नवतारा परिकल्पना।

इन सिद्धान्तों के अनुसार सौर-परिवार की उत्पत्ति में प्रायः दो सहायक है। इसलिए इनको अर्थात् इन सिद्धान्तों के समूह को द्विपैतृक सिद्धान्त कहा गया। इनमें से विशेषकर महत्त्व रखने वाले सिद्धान्तों की सामान्य चर्चा अधोलिखित रूप में की गई है।

1. बफन की संघर्षण परिकल्पना

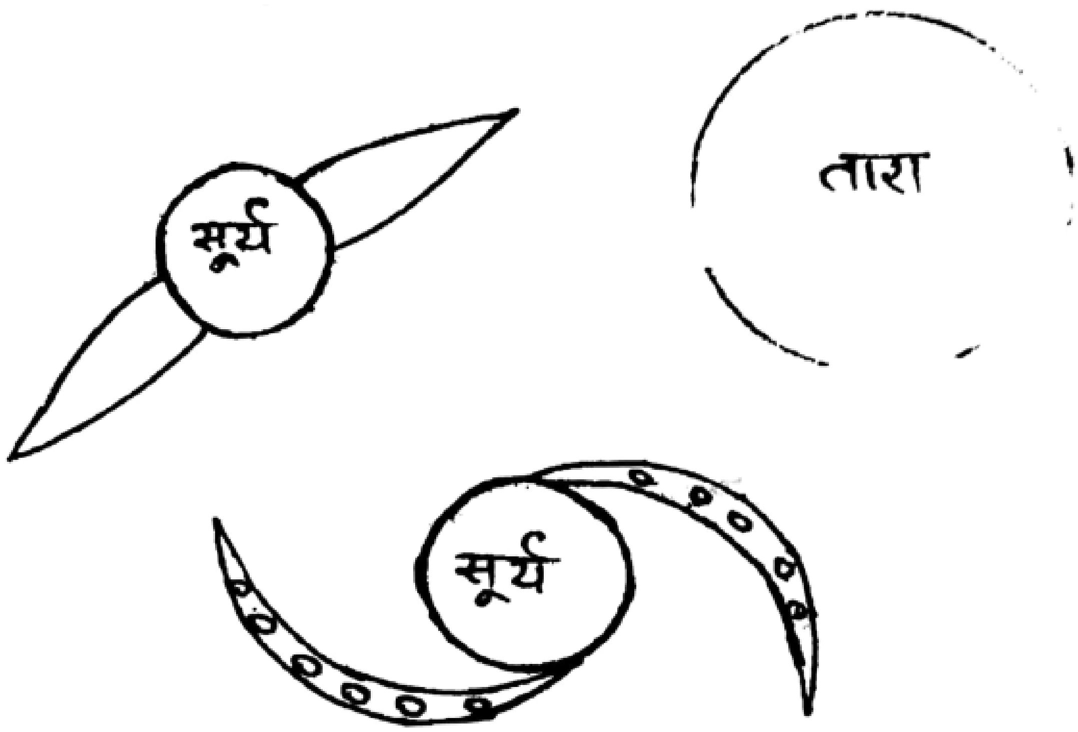
सर्वप्रथम काण्ट महोदय से भी पूर्व सन् 1745 में फ्रांसदेशीय जार्जकातेदबफन महोदय ने एक वैज्ञानिक परिकल्पना प्रस्तुत की। इस परिकल्पना के अनुसार एक विशाल तारे की सूर्य के साथ जबरदस्त भिडन्त हुई। इस संघर्षण से सूर्यांश पदार्थ विखंडित होकर सुदूर तक गया। इस सूर्यांश पदार्थ के द्वारा ही हमारे ग्रह एवं उपग्रह बने। इस प्रकार सौर-परिवार की उत्पति हुई।



चित्र 7 : बफन के अनुसार सूर्य तथा तारे की टक्कर

2. चेम्बरलेन एवं मोल्टन की ग्रहाणु परिकल्पना

अमेरिकन विद्वान चैम्बरलेन और मोल्टन का कहना है कि सूर्य के समीप दूसरे तारे के आने से सूर्य में बड़ी उथल-पुथल मची होगी और सूर्य में गुरुत्वाकर्षण के कारण बड़ी-बड़ी उत्ताल तरंगे उठी होंगी। इसके कारण ही बहुत सारा सूर्यांश पदार्थ आकाश में जा गिरा होगा। ठीक उसी प्रकार जिस



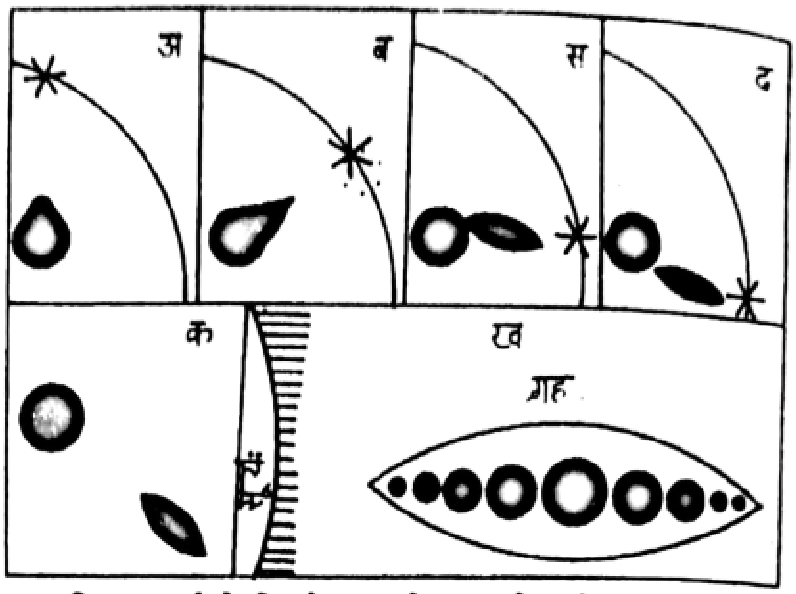
चित्र 8 : चेम्बरलेन एवं मोल्टन की ग्रहाणु परिकल्पना के अनुसार सूर्यांश पदार्थ का तारे के गुरुत्वाकर्षण का बाहर निकलकर सौर परिवार का रूप लेना।

प्रकार चन्द्रमा में ज्वार आ जाता है। सूर्य से पृथक् हुआ यह सूर्यांश पदार्थ पहले आग के गोले की भाँति ही गर्म रहा होगा। शनैः-शनैः यह पदार्थ ठंडा होने लगा और सूर्य के आकर्षण में घूमते हुए इस पदार्थ ने ही ग्रह उपग्रहों का रूप धारण कर लिया।

3. जीन्सजेफ्रीज की ज्वारीय परिकल्पना

1919 ई. में सन् में सर जीन्स महोदय ने ज्वारीय परिकल्पना का प्रतिपादन किया। 1929 ई. वर्ष में जेफ्रीज महोदय ने जीन्स महोदय की परिकल्पना में संशोधन किया। इस परिकल्पना के अनुसार आदिकालीन स्थिति में सूर्य

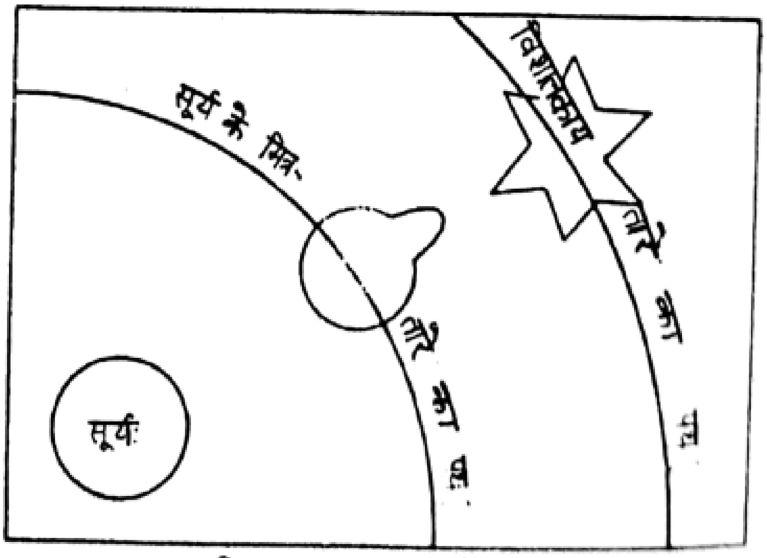
एक गैसीय पिंड था। एक तारा घूमता हुआ सूर्य के समीप आया। इस घूमते हुए तारे के कारण सूर्य में ज्वार की उत्पत्ति हुई अर्थात् सूर्य में ज्वार रूप में उभार आया। कालान्तर में वह तारा घूमता हुआ विलीन हो गया। सूर्य और तारे के मध्य में जो पदार्थ उत्पन्न हुए थे वे 'सिगार' की आकृति में थे। ज्वारीय पदार्थों के पिण्ड धीरे-धीरे सूर्य के आकर्षण में आए और आकर सूर्य के चारों ओर घूमने आरम्भ हुए। इस प्रकार धीरे-धीरे सौर-परिवार की उत्पत्ति हुई।



चित्र 9 सूर्य से निकले ज्वार के द्वारा सौर परिवार का जन्म

4. रसेल की युग्मतारा परिकल्पना

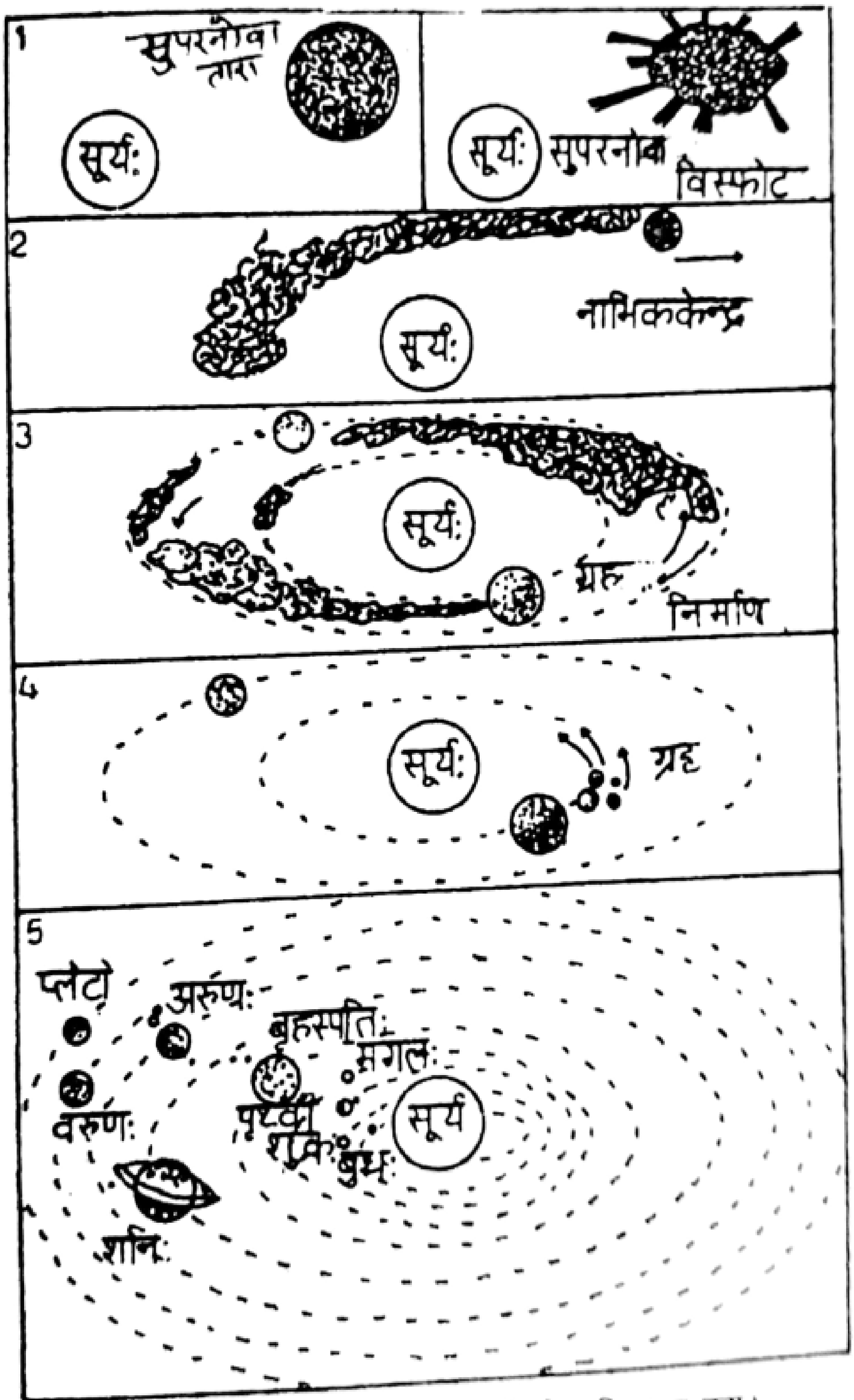
श्री एच. एन. रसेल महोदय के अनुसार आदि काल में हमारे सूर्य के चारों तरफ एक तारा घूम रहा था। कुछ समय पश्चात् एक विशालकाय तारा घूमते हुए तारे के बाहर से गुजर रहा था। उसके आकर्षण से जो सूर्य का चक्कर लगा रहा था उससे वायव्य पदार्थ पृथक् हुआ। ये वायव्य पदार्थ ही सूर्य के चारों तरफ घूमते हुआ सौर-परिवार के रूप में परिणत हुआ।



चित्र 10 युग्म तारा परिकल्पना

7. फ्रेडहायल की नवतारा परिकल्पना

कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के गणितज्ञ प्रो. फ्रेडहायल महोदय ने सन् 1939 ईस्वीय वर्ष में *'नेचर ऑफ दि यूनिवर्स'* नामक एक निबन्ध लिखा। इसमें उन्होंने सौर-परिवार की उत्पत्ति की व्याख्या एक नूतन ढंग से की। इनके



चित्र 11 सुपरनोवा तारे के विस्फोट से सौर परिवार का जन्म।

अनुसार सूर्य के समीपस्थ सुपरनोवा तारे में विस्फोट हुआ। उस विस्फोट के परावर्तन शक्ति के कारण सुपरनोवा तारे का केन्द्र भाग 'क्रोड' सूर्य के आकर्षण से बाहर निकल गया और वहाँ स्थित अवशिष्ट गैसीय मेघ (वायव्य पदार्थ) सूर्य के चारों तरफ घूमने लगा। इसी वायव्य पदार्थ ने सौर-परिवार का रूप धारण कर लिया।

नीहारिका-ग्रहाणु परिकल्पनाओं में तुलना

नीहारिका परिकल्पना	ग्रहाणु परिकल्पना
(क) सौर-परिवार की उत्पत्ति एक ही तारे से हुई।	(क) सौर-परिवार की उत्पत्ति दो तारों के संघर्षण से हुई।
(ख) आदि अवस्था में गैसीय पदार्थ विद्यमान था।	(ख) ग्रहाणु आदि ठोस अवस्था में थे।
(ग) आरम्भ में ऊष्मा अवस्था थी।	(ग) आरम्भ में शीतलावस्था थी।
(घ) तापमान क्रमशः न्यूनता की ओर आया।	(घ) तापमान क्रमशः बढ़ा।
(ङ) आदि अवस्था में वायुमण्डल था।	(ङ) आदि अवस्था में वायुमण्डल नहीं था।

आदित्य (सूर्य)

ऋग्वेद में सूर्यादि ग्रहों के उत्पत्ति के सन्दर्भ में विस्तृत व्याख्या करते हुए कहा गया है कि सूर्य पूरे संसार की आत्मा है।[1] यही जीवन को देने वाला है। सूर्य के बिना पृथ्वी में जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती है। यह सूर्य स्वयं जल कर हमें जीवन शक्ति प्रदान करता है। सूर्य से आने वाली ताप की मात्रा यदि कुछ ही परिवर्तित हो जाए तो पृथ्वी में जीवन का अस्तित्व समाप्त हो जाएगा। ताप की वृद्धि होने पर हम जल जाएँगे और ताप की न्यूनता होने पर ठंड से सिकुड़ कर मर जाएँगे। इसलिए सूर्य जगत् की

1. सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च। ऋ. वे. 1 ।।115 ।।

आत्मा है। सूर्य को हम आदि में उत्पन्न होने के कारण आदित्य कहते हैं। आदित्य को ही सूर्य भी कहा गया है। पृथ्वी-अन्तरिक्ष-द्यु की सृष्टि के पश्चात् द्यु स्थान में आदित्य की उत्पत्ति स्वीकार की गई। प्रजापति ने अपने सृजन कामना के अनन्तर वायु के सहयोग से अन्तरिक्ष में मिथुन का निर्माण हुआ। तत्पश्चात् एक अण्डे की उत्पत्ति हुई, प्रजापति ने उस अंडे का स्पर्श किया और यशस्वी होने की कामना की, जिसके फलस्वरूप इसी से आदित्य की उत्पत्ति हुई।[1] *काठक संहिता* में कहा गया है कि वायु तथा अन्तरिक्ष के मिथुनीभाव से सूर्य की उत्पत्ति हुई और अन्तरिक्ष में आप एवं अग्नि की मायास्वरूप वायु का स्वतंत्र अस्तित्व है इसलिए सूर्य में पार्थिवांश की बात निराधार हो जाती है। आदित्य में वायु, आपः तथा अग्नि का पूर्णतः समावेश होता है।[2] इस रश्मिपुंज रूपी आदित्य में 'आपः' की सत्ता विद्यमान रहती है। जैसा कि *शतपथ ब्राह्मण* में कहा गया है कि आदित्य आपः का अधिष्ठान है, जहाँ वह तपता है।[3] वैदिक विज्ञान में ईश्वर की मूल आद्या भौतिक शक्ति को, जो त्रिकाल सत् है, अदिति प्रतीक से प्रतिष्ठित किया गया है। सृष्टि उत्पत्ति की ईश्वरीय कामना को वहन करने हेतु जब मूल आद्या शक्ति रचना के प्रधान चरण में नियोजित होती है तो उसकी वैदिक संज्ञा अप् या आपः है। कह सकते हैं कि वैदिक विज्ञान में सृष्टि रचना हेतु नियोजित मूल शक्ति का प्रथम रूप या परिणाम 'आपः' कहा गया है। सूर्य में प्राण वायु, अग्नि, आपः का समावेश है परन्तु सूर्य में पार्थिवांश नहीं के बराबर है। इस पार्थिवांश के सन्दर्भ में एक योरोपीय वैज्ञानिक का मत निम्नांकित है, यथा—

The earth's density is same four times as great as the sun's since the mean density of the earth is 5.5 times that of water. That of the sun (taking the density of water as unity) is 1.4 already. We are begnning to glimpse the fact that the sun cannot be in a solid state for the constituent materials are on

---

1. शतपथ ब्राह्मण 4 ।1 ।2 ।3
2. काठक संहिता 6 ।3
3. शतपथ ब्राह्मण 7 ।5 ।6 ।8



चित्र 12A आदित्य (सूर्य)

the everage much less dense. Then these solid materials of which the earth is compased.

The Sun's mean density which is only one quarter of the earth's and since the time of sacchi and lockyear it has been realised and repeatedly confirmed that the sun is a wholly gaseaus globe.[1]

पृथ्वी का घनत्व सूर्य के घनत्व से प्रायः 4 गुना अधिक हैं। यदि पानी का घनत्व 1 माने तो पृथ्वी का घनत्व 5.5 होगा। इसी आधार पर सूर्य

1. Abelte, the sun, p. 40

का घनत्व 1.4 है और गुरु का 1.3 है। घनत्व से स्पष्ट प्रतीत होता है कि सूर्य ठोस पिंड नहीं अपितु हल्की गैसों से बना है। अब हमें ठीक ढंग से समझने के लिए पृथ्वी को समझना होगा। पृथ्वी का व्यास प्रायः 12700 कि.मी. है और इसका भार लगभग 6600000000000 टन है। सूर्य का व्यास पृथ्वी के व्यास से 109 गुना अधिक है। सूर्य इतना बड़ा है कि इसमें हमारी पृथ्वी जैसे 12 लाख पिण्ड समा सकते हैं परन्तु सूर्य पृथ्वी से 13 लाख गुणा भारी नहीं है क्योंकि सूर्य हल्की गैसों से बना है। अर्थात् सूर्य का घनत्व पृथ्वी से कम है तथापि सूर्य पृथ्वी से प्रायः 330000 गुणा भारी है। यह हमसे प्रायः 149600000 किलोमीटर दूर है। ज्योतिष में इस दूरी को खगोलीय इकाई के रूप में ग्रहण किया जाता है। इस दूरी को एक मानकर अन्य ग्रहों की दूरियाँ नापी जाती हैं।

सूर्य की उत्पत्ति के विषय में दशम मण्डल में एक ऋचा[1] की व्याख्या में *'वैदिक सृष्टि उत्पत्ति रहस्य'* नामक पुस्तक में डॉ. विष्णुकान्त वर्मा महोदय ने कहा है कि सूर्य की उत्पत्ति के समय ही समस्त नक्षत्रों की उत्पत्ति होती है। उस समय कुछ लोक (सृष्टियाँ) जोड़े में उत्पन्न होते हैं जिन्हें राशियाँ (MULTIPLE STARS) कहते हैं। समस्त लोकों की उत्पत्ति हाइड्रोजन-हीलियम नामक युगल गैसों के साहचर्य से होती है। तत्त्व मीमांसक इस सूर्य को जब मूल शक्ति अदिति के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुआ देखते हैं तब ही यह समझना चाहिए कि वे समस्त लोगों के उद्भव को ठीक प्रकार से देख रहे हैं। *ऋग्वेद* की ही एक अन्य ऋचा[2] में कहा गया है कि किस प्रकार मूल आद्या शक्ति प्रकृति से आदि सृष्टि काल में प्रकट हुए महासूर्य हिरण्यगर्भ से कालान्तर में लोकों (पिण्डों) की उत्पत्ति हुई। इस उत्पत्ति की अन्तिम कड़ी रूप सूर्य आज भी हमारे लिए ऊषाओं और दिन-रात का सृजन इसी प्रकार कर रहा है।

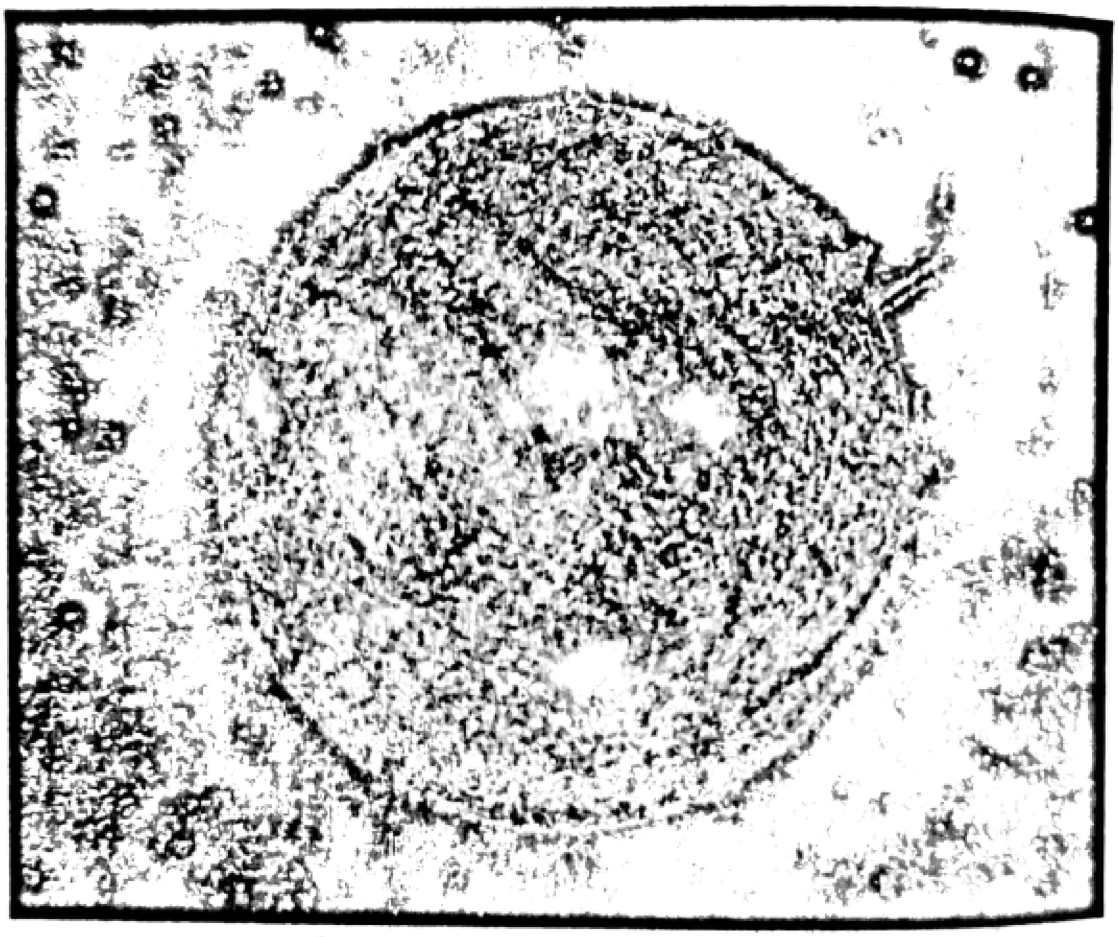
---

1. यदेदेंन मदधुर्यज्ञियासो दिवि देवाः सूर्यमादितेयम्।
यदा चरिष्णु मिथुनावभूतामादित प्रापश्यन्कुवनानि विश्वा।। ऋग्वेद 20।88।11
2. विश्वस्मा अग्निं भुवनाय देवाः वैश्वानरं केतुमह्नामकृण्वन्।
आ यस्ततानोषसो विभातीरपो ऊर्णोति तमो अर्चिषायन्।। ऋग्वेद 10।88।12

सूर्यताप

'असौ वै सूर्यो योऽसौ तपति'।[1] **'यश्चासौ तपते सूर्यः'**[2] **'सूर्यादुष्णं निस्रवते सोमाच्छीतं प्रवर्तते'**[3] वह सूर्य तपता है। सूर्य से ऊष्मा होती है। भूमिस्थ जीवन पर सूर्य के ताप का क्या प्रभाव होता है? इस प्रश्न का उत्तर वेदों एवं पुराणों में बहुत स्थलों पर दिखाई देता है, यथा–

उद्यन्तं च पुनः सूर्यमौष्ण्यमाग्नेयमाविशत्।
यश्चासौ तपते सूर्यः पिबन् अम्भो गभस्थिभिः।।
पार्थिवाग्निविमिश्रोऽसौ दिव्यः शुचिरिति स्मृतः।
उदिते हि पुनः सूर्ये ह्यौष्ण्यमाग्नेय माविशेत्।
संयुक्तो वह्निना सूर्यस्तपते तु ततो दिवा।।[4]



चित्र 12B सूर्य से निकलती हुई सौर लपटें।

---

1. कौषीतकि ब्राह्मण 5/8
2. ब्रह्माण्ड पुराण पृ. 25।11
3. तत्रैव 22।20
4. ब्रह्माण्ड पुराण पृ. 24।17-23. 21।57. विष्णु पुराण 2।8।21-25

अर्थात् पार्थिव अग्नि के परमाणु 'आपः' के साथ सूर्य रश्मियों द्वारा सूर्यमण्डल की शुचि अग्नि के साथ मिश्रित होते हैं। उदय होते हुए सूर्य में आग्नेय उष्णता प्रविष्ट होती है। वही पार्थिव अग्नि की उष्णता सूर्य रश्मियों में ताप उत्पन्न करती है। वह्नि से संयुक्त सूर्य दिव में तपता है। वैदिककालीन सृष्टि सम्बन्धित विचारों में 'आपः' एक महत्त्वपूर्ण परमाणु इकाई है 'वेद विद्या-निदर्शन' में पं. भगवत् दत्त ने कहा कि हाइड्रोजन 'आपः' का ही रूपान्तर है। यह सुव्यक्त है। अतः वैदिक विज्ञान की अवधारणा के अनुसार यह निश्चित है कि सूर्य में आपः की माया ही प्रधान है। इस आपः के अतिरिक्त सूर्य में सभी प्राणों का वास है परन्तु प्राणों में भार नहीं होता है। सम्भवतः सूर्य में आपः और आग्नेय परमाणुओं का अनुबन्ध होता रहता है। अतः सूर्य तपता रहता है।

सूर्य ताप के सन्दर्भ में पाश्चात्य वैज्ञानिकों का मत

It has been said that the sun's atmospheare consists largely of hydrogen. As a working hypothesis, we shall take this to hold good also for the in teriar. Now we know that the mean density of water if hydrogen of this density were to behave like a gas, then the elementary gas-law-requires that far a pressure equal to the average calculated above, the temperature must be about 3 million degrees. Under these condition the hydrogen wou!d practically campetely ionined and the value given for the temperature takes account of this.

किसी भी तारे की उत्पत्ति एवं विनाश एक विशेष प्रकार की घटना से होता है। इसी प्रकार 5 सौ करोड़ वर्ष पूर्व हमारा सूर्य भी उत्पन्न हुआ। क्योंकि हमारा सूर्य भी एक तारा ही है। यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यह सूर्य धीरे-धीरे रक्तदानव अवस्था को प्राप्त करेगा। उस समय सूर्य का व्यास बहुत बढ़ जाएगा। बुध, शुक्र, पृथ्वी सभी सूर्य की परिधि में आ जाएँगे और ये ग्रह नष्ट हो जाएँगे। प्रायः 500 करोड़ वर्षों में सूर्य 'श्वेतवामन' के रूप में परिणत होकर अपनी मृत्यु को प्राप्त करेगा।

तारों की उत्पत्ति एवं विनाश के सम्बन्ध में विशेष चर्चा इससे पूर्व की गई है।

प्रलय काल में सूर्य

स्वयं प्रकाशित होने वाले सूर्यादि लोक भी नाशवान है। ये भी नित्य प्रकाश के स्रोत नहीं हैं। सभी लोकों का प्रकाशक यदि कोई है तो वह परब्रह्म परमेश्वर सत्य ही हो सकता है, यथा–

वैश्वानरं विश्वहा दीदिवासं मन्त्रैरग्निं कविमच्छावदामः।
यो महिम्ना परिबभूवोर्वोतावस्ताद्धुत देवः परस्तात्।।[1]

Both sun and earth an account of sun's superior gravity have a relative movement based on mutual attraction.[2]

समस्त सौर-परिवार को प्रकाशित करने वाला सूर्य अपनी ही रश्मियों के द्वारा नष्ट हो जाता है। सारी रश्मियाँ एक दूसरे में विलीन होती जाती हैं। इसका विवेचन *ब्रह्मांड पुराण* में मिलता है जिसका सारभूत स्वरूप इस प्रकार है–

सहस्रं यत्तु रश्मीनां सूर्यस्येह विनश्यति।।
ते सप्त रश्मयो भूत्वा एकेको जायते रवि।।
निर्दग्धेषु च लोकेषु तदा सूर्यस्तु सप्तभिः।।[3]

सूर्य पर हमेशा नित्य प्रति उथल-पुथल मचती रहती है। क्योंकि सम्प्रति सूर्य एक धधकता हुआ अग्निपिण्ड है जो कि अपनी कुमारावस्था में चल रहा है। सूर्य की सतह पर ऊँची-ऊँची ज्वालाएँ उठती रहती हैं। सूर्य के खग्रास ग्रहण के समय इन ज्वालाओं को देखा जा सकता है। हर ग्यारह वर्ष बाद सूर्य अधिक सक्रिय हो जाता है। इन 11 वर्षों में सौर ज्वालाएँ कम-ज्यादा होती रहती हैं। इन्हीं वर्षों में सूर्य कलंक में भी ह्रास-वृद्धि देखी जाती है। आज वैज्ञानिकों ने पाया कि सूर्य की इस सक्रियता से भूमण्डल का जीवन प्रभावित होता है।

---

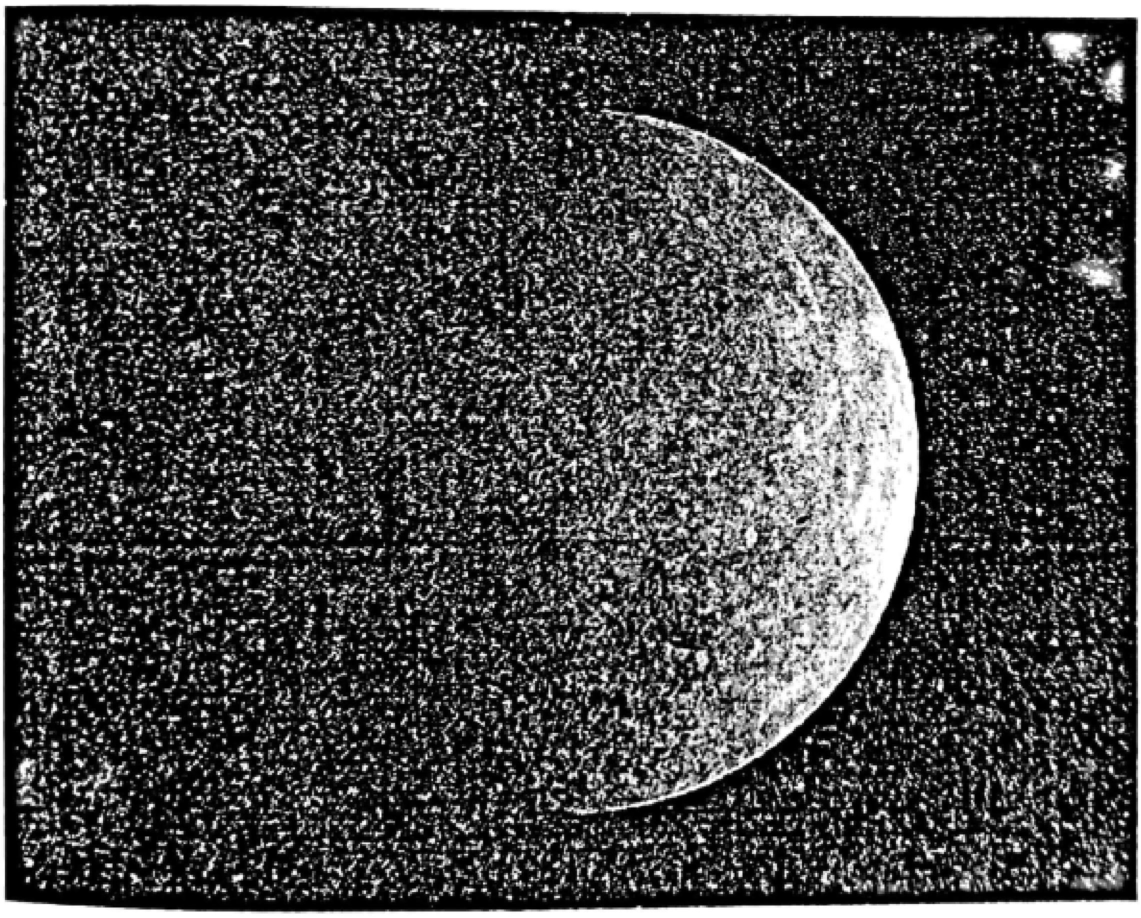
1. ऋग्वेद 10।88।15
2. वैदिक सृष्टि उत्पत्ति रहस्य पृ. 207
3. ब्रह्मांड पुराण पृ. 5।123, 125, 130

बुध

बुध, शशिज, चन्द्रज, सोमपुत्र, त्विषिपुत्र, ज्ञ इत्यादि नामों से पुराणों में कहा गया है। यूनानी लोगों ने बुध को Mercury कहा। उनकी कथाओं के अनुसार बुध तेजी से एक देवता का सन्देश दूसरे देवता को देता है। भारत में बुध को वेदशास्त्र का ज्ञाता कहा गया है, यथा–

नारायण बुधं प्राहुर्वेदज्ञानविदो बुधः।[1]

यह बुधग्रह सूर्य का समीपवर्ती ग्रह है। अन्य ग्रहों की अपेक्षा यह सूर्य-ताप से अधिक प्रभावित है। प्रातः या सायं अर्थात् सूर्योदय से पहले पूर्व में तथा सूर्यास्त के पश्चात् पश्चिम में इसे देखा जा सकता है। बुधग्रह पर वायुमण्डल नहीं है। इसका धरातल प्रायः चन्द्र के धरातल के समान ही दिखाई देता है। चन्द्रमा के ही समान इस ग्रह का धरातल भी उल्का पिण्डों



चित्र 13 बुध जो आधा दिखाई दे रहा है।

1. ब्रह्माण्ड पुराण पृ. 5।123, 124, 130

के टकराने से बने क्रेटरों से भरा पड़ा है। कुछ वैज्ञानिकों का मानना यह भी है कि बुध कभी शुक्र का उपग्रह रहा होगा। इस ग्रह का अक्षीय भ्रमणकाल पृथ्वी की अपेक्षा बहुत कम है इसलिए यहाँ दिन काफी बड़ा होता है। मेरिनर 10 ने हमें बताया कि बुध के चारों ओर एक चुम्बकीय क्षेत्र भी है परन्तु वह पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र की अपेक्षा 100 गुणा निर्बल है। बुध ग्रह प्रायः पृथ्वी के 59 दिनों में अपने अक्ष पर एक चक्कर लगा लेता है। इसको इस प्रकार भी कह सकते हैं कि बुध का एक दिन हमारे 59 दिनों के बराबर होता है। चन्द्र की तरह बुध भी हमें घटती-बढ़ती कलाओं के रूप में दिखाई देता है। बुध की इन कलाओं को दूरबीन से देखा जा सकता है। अमेरिकी अन्तरिक्ष यान मेरिनर-10 ने 1974 में यह बताया कि बुध पर खड्डे हैं तथा हाइड्रोजन व हीलियम का स्वल्प वायुमण्डल है जो ना के बराबर है। इस ग्रह पर जीवन के अस्तित्व की कोई सम्भावना नहीं है।

बुध ग्रह का भौतिक स्वरूप

1. सूर्य से दूरी	57909100 कि.मी.
2. व्यासमान	4878 कि.मी.
3. अक्ष. परिभ्रमण काल	58.6 दिन
4. सूर्य के चारों तरफ भ्रमणकाल	87.97 दिन
5. द्रव्यमान	0.055 (पृथ्वी के सापेक्ष)
6. कक्षीय उत्केन्द्रता	0.206 अंश
7. कक्षीय झुकाव	7^0.00 अंश (भूकक्षीय तल से)
8. कक्षीय गति	47.8 (कि.मी./सेकेंड)
9. पलायन गति	4.2 (कि.मी./सेकेण्ड)
10. गुरुत्वाकर्षण	0.38 (पृथ्वी=1)
11. घनत्व	0.98 (पृथ्वी=1)
12. पृष्ठीय तापमान	400^0 सेंटीग्रेड
13. उपग्रह संख्या	0 (शून्य)

शुक्र

शुक्र, दैत्यगुरु, सित, उशना, काव्य, भार्गव आदि नामों से शुक्र को जाना जाता है। आकाश में यह ग्रह बहुत चमकीला दिखाई देता है। शुक्र की खोज आकाश में आसानी से की जा सकती है। पश्चिम में सूर्य के अस्त के बाद सर्वाधिक चमकने वाला ही शुक्र होता है। शुक्र के सन्दर्भ में *ब्रह्माण्ड पुराण* में एक मत मिलता है कि–

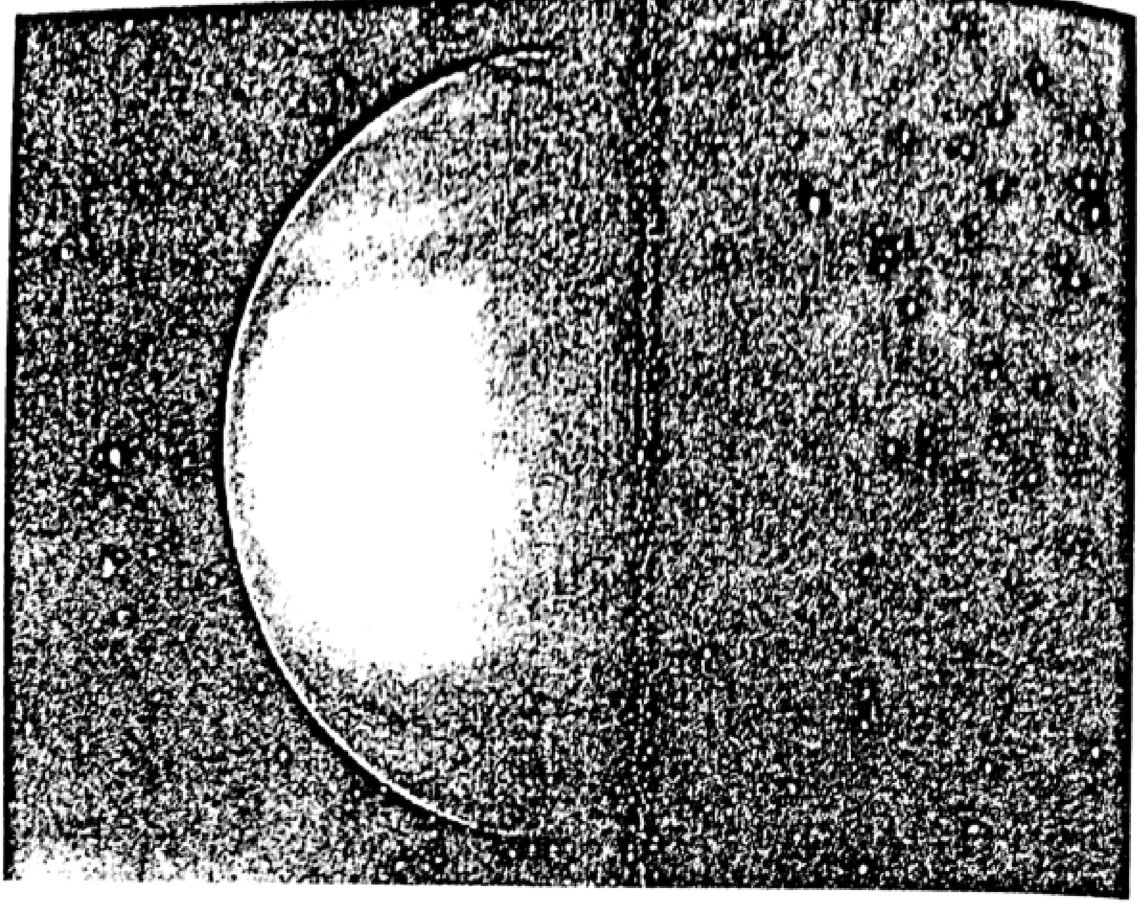
भार्गवस्य रथः श्रीमान् तेजसा सूर्यसन्निभः।
पृथिवीसम्भवैर्युक्तो ना वा वर्णे हयोत्तमैः।।
श्वेतः पिशङ्गः सारङ्गो नीलः पीतो विलोहितः।
कृष्णश्च हरितश्चैव पृषत् पृश्निरेव च।।[1]

अर्थात् भार्गव का रथ तेज में सूर्य के सदृश है। इसमें जो अश्व युक्त हैं वे पृथ्वी से उत्पन्न हैं। ये दश वर्ण के हैं–श्वेत, पिशंग, सारंग, नील, पीत, विलोहित, कृष्ण, हरित, पृषत, और पृश्निः। इतने वर्ण शुक्र की रश्मियों के द्योतक हैं। शुक्र का तेज सूर्य के सदृश है। इस सन्दर्भ में आधुनिक वैज्ञानिकों का कहना है कि–

Venus reflects about 60 percent of the sunlight that falls upon it.[2]

सूर्योदय के पूर्व पूर्व आकाश में तथा सूर्यास्त के बाद पश्चिम आकाश में प्रायः एक अधिक चमकीला तारा दिखाई देता है यही तारा शुक्र कहा जाता है। देहातों में इसे लोक सुकवा, भोर का तारा, सायंकाल का तारा आदि भिन्न रूपों में कहते हैं परन्तु वास्तविक रूप में यह तारा नहीं, शुक्र ग्रह है। यह ग्रह बहुत प्राचीनकाल से ही पहचाना जाता है। वैदिक साहित्य में इसे शुक्र, वेन आदि नामों से जाना जाता है। यूनानी लोग इसे 'कुप्रिस' और रोमन लोग 'वीनस' नाम से पुकारते हैं। रोम में 'वीनस' को सौन्दर्य की देवी कहते हैं। 'वेन' और 'वीनस' शब्दों में अधिक साम्यता प्रतीत होती है। शुक्र ग्रह हमारी अपेक्षा सूर्य के अधिक पास है इसलिए उसे सूर्य से

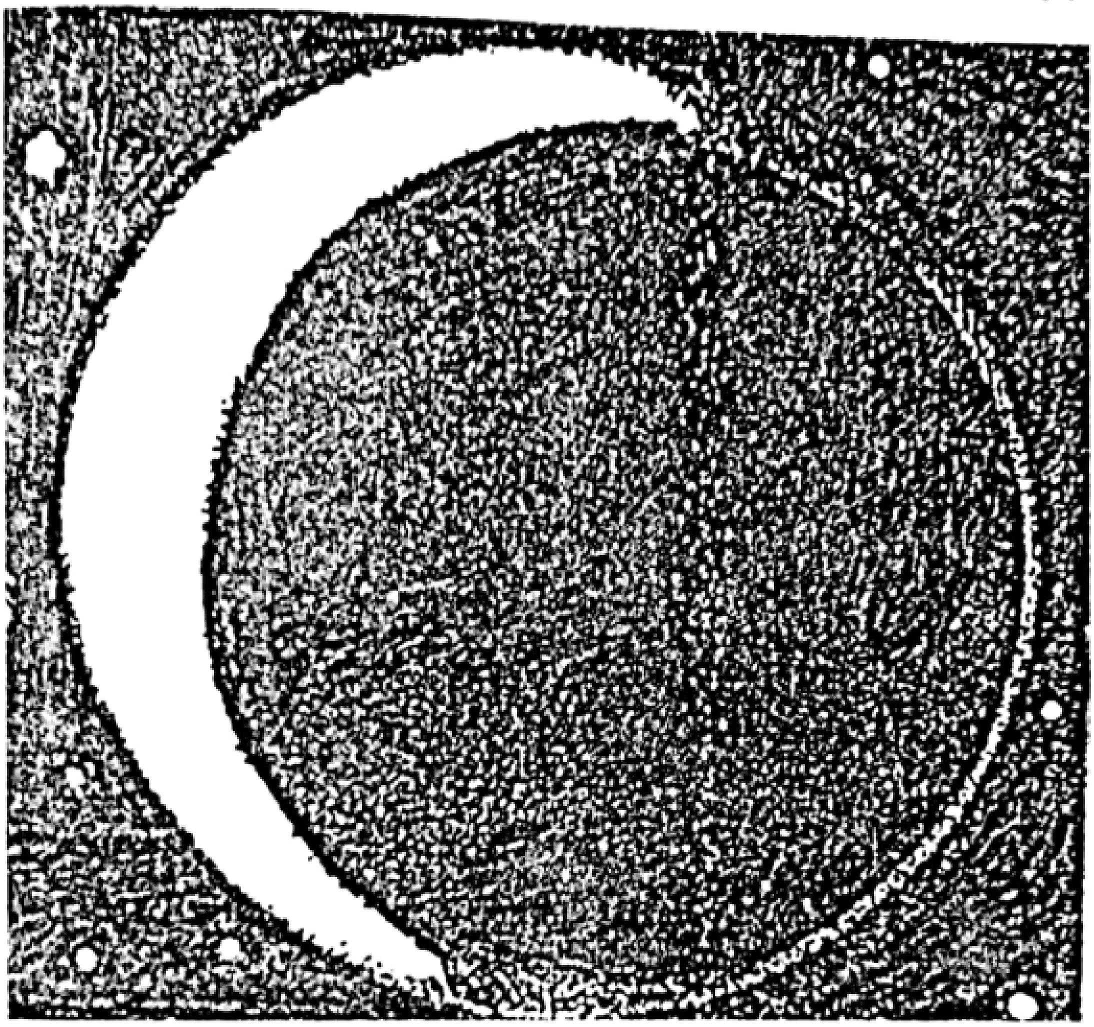
1. ब्रह्माण्ड पुराण पू. 23।81-83
2. लाइफ आन अवर वर्ल्डस् पृ. 102



चित्र 14 शुक्र

अधिक ऊष्मा मिलती है। शुक्र ग्रह को सूर्य की ऊर्जा हमसे ढाई गुणा अधिक मिलती है। शुक्र का सतही तापमान 400^0 सेंटीग्रेड से भी अधिक है। सोवियत संघ ने 'वेनेरा' और अमेरिका ने 'मेरिनर' नामक विमान शुक्र की खोज के निमित्त शुक्र पर भेजे। इन्होंने शुक्र ग्रह का अन्वेषण किया तथापि शुक्र ग्रह के सन्दर्भ में अनेक बातें अज्ञात हैं क्योंकि शुक्र ग्रह की सतह उसके वायुमण्डल के घने बादलों से ढकी है। इसी कारण शुक्र ग्रह के अक्षीय वेग के सन्दर्भ में वैज्ञानिकों के विभिन्न मत हैं। कुछ का कहना है कि एक दिन में शुक्र अपनी धुरी का एक भ्रमण पूरा करता है परन्तु कुछ वैज्ञानिकों का कहना है कि 243 दिनों में एक चक्कर पूरा करता है। अगर 243 दिनों की बात सही है तो चन्द्र, बुध, एवं शुक्र का प्रायः एक गोलार्द्ध अधिकतर सूर्य की ओर रहता होगा। शुक्र ग्रह में एक विशेष बात और है जो अन्य ग्रहों में नहीं है। शुक्र अपनी धुरी पर पश्चिम से पूर्व की ओर नहीं बल्कि पूर्व से पश्चिम की ओर चक्कर लगाता है। इसी बात को लेकर हम इसे सौर-परिवार का एक अद्‌भुत ग्रह कह सकते हैं। शुक्र पर वायुमण्डल का

दाब पृथ्वी की अपेक्षा 90 गुणा अधिक है। इसके वायुमण्डल में 96% कार्बन-डाइआक्साइड, 3.4% नाइट्रोजन तथा अल्प मात्रा में अन्य कुछ गैसें हैं, परन्तु आक्सीजन की मात्रा नहीं है। अतः जीवन की सम्भावना नहीं बन सकती। इस ग्रह के अपने चन्द्र भी नहीं हैं। पृथ्वी से कई गुणा अधिक शक्तिशाली विद्युत विसर्जन शुक्र ग्रह के वायमुंडल में उत्पन्न होती है।



चित्र 14A शुक्र जो चन्द्रमा की तरह दिखाई दे रहा है।

शुक्र ग्रह का भौतिक स्वरूप

1. सूर्य से दूरी	108208900 कि.मी.
2. व्यासमान	12100 कि.मी.
3. अक्ष परिभ्रमण काल	243 दिन
4. सूर्य के चारों तरफ भ्रमणकाल	224.7 दिन

5. द्रव्यमान	0.8 (पृथ्वी के सापेक्ष)
6. कक्षीय उत्केन्द्रता	0.007 अंश
7. कक्षीय झुकाव	$7^0 24'$ (भूकक्षीय तल से)
8. कक्षीय गति	35.0 (कि.मी./सेकेंड)
9. पलायन गति	10.3 (कि.मी./सेकेण्ड)
10. गुरुत्वाकर्षण	0.89 (पृथ्वी=1)
11. घनत्व	0.88 (पृथ्वी=1)
12. पृष्ठीय तापमान	450^0 सेंटीग्रेड
13. उपग्रह संख्या	0 (शून्य)

पृथ्वी

एक समय आकाश में सर्वत्र वाष्प कण (गैस) व्यापक रूप से व्याप्त थे। वाष्प कणों के आकर्षण एवं विकर्षण से अणु-परमाणुओं की उत्पत्ति हुई। ये ही अणु परमाणु पृथ्वी की उत्पत्ति में कारणस्वरूप हैं। जैन दर्शन इसकी व्यापक चर्चा करता है, यथा–

अण्वादीनां संघाताद द्व्यणुकादय उत्पद्यन्ते।

तत्र स्वावस्थिताकृष्टशक्ति रेवाघसंयोगे कारणभावामापद्यते।।

इस सन्दर्भ में श्रुति कहती है–"**आकाशाद्वायुर्वायोरग्निरग्नेरापः अद्भयः पृथ्वी चोत्पद्यते**" अर्थात् आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी उत्पन्न हुई। इससे ज्ञात होता है कि आरम्भ में मात्र आकाश व वाष्प कण ही समस्त जगत्-मण्डल में व्यापक रूप से व्याप्त थे। इन्हीं के आकर्षण-विकर्षण से सृष्टि हुई।

हमारी पृथ्वी का भूमध्यरेखीय व्यास मान 12756 किलोमीटर है तथा ध्रुवीय व्यास 12714 कि.मी. है। इसके चारों तरफ वायुमण्डल का एक मोटा आवरण है जो अन्तरिक्ष से आने वाली घातक विकिरणों एवं उल्कापातों से हमारी रक्षा करता है। पृथ्वी के धरातल का 71% भाग जल से ढका है तथा शेष भाग ही भूतल के रूप में जाना जाता है जिस पर दुनिया के सभी महाद्वीप हैं। पृथ्वी का एक चुम्बकीय क्षेत्र भी है और इसके चारों ओर आवेशित कणों की दो विकिरण पट्टियाँ हैं जिन्हें वान एलेन विकिरण



चित्र 15 पृथ्वी का अन्तरिक्ष से लिया गया चित्र

पट्टियाँ कहते हैं। पृथ्वी अपनी धुरी पर झकोरा खाते हुए लट्टू के समान घूमती है। इस प्रकार अक्ष 26000 वर्षों में लट्टू के आकार में घूमते हुए एक चक्कर पूरा करती है। इसी के आधार पर तारों के सापेक्ष ध्रुव की स्थिति बदलती रहती है। वर्तमान में 'पोलरिस' तारा हमारा ध्रुव तारा है। परन्तु लगभग सन् 14000 तक 'लीरा' नक्षत्र मण्डल में स्थित 'वेगा' तारा ध्रुव तारा हो जाएगा। भारतीय ज्योतिष में कमलाकर भट्ट ने सर्वप्रथम ध्रुव तारे को चल-तारा कहा और यह स्पष्ट रूप में कहा कि ध्रुव स्थिर नहीं है, वह स्थान बदलता है। हमारी 'पृथ्वी सौरमण्डल का सबसे बड़ा ग्रह नहीं है। बुध, शुक्र, मंगल से हमारी पृथ्वी बड़ी है परन्तु शनि, बृहस्पति, यूरेनस तथा नेपच्यून से छोटी है। सौर-परिवार का सबसे बड़ा ग्रह बृहस्पति है।

यह हमारी पृथ्वी से 1300 गुना बड़ा तथा 318 गुणा भारी है। कह सकते हैं कि बृहस्पति के अन्दर यदि हम पृथ्वी को डालें तो कम-से-कम 1300 पृथ्वियाँ बृहस्पति में समा सकती हैं। हमारी पृथ्वी का एक उपग्रह है जिसे हम चन्द्र कहते हैं। इसी के कारण पृथ्वी में ज्वारभाटा आता है तथा इसी के कारण सूर्य एवं चन्द्रग्रहण मुख्य रूप से होते हैं। पूरे सौर-परिवार में मात्र हमारी पृथ्वी ही ऐसी है जिस पर जीवन है।

पृथ्वी का भौतिक स्वरूप

1. पृथ्वी का व्यासमान–	
भूमध्यरेखीय	12756 कि. मी.
ध्रुवीय	12714 कि.मी.
2. अक्ष परिभ्रमण काल	23 घण्टा, 56 मिनट, 04 सेकेण्ड
3. कक्षीय परिभ्रमण काल	365.5 दिन
4. सूर्य से दूरी	149600000 कि.मी.
5. कक्षीय गति	29.8 कि.मी./सेकेण्ड
6. अक्षीय झुकाव	23.5 अंश
7. पलायन गति	11.2 कि.मी./सेकेण्ड
8. घनत्व	05.52 (जल की अपेक्षा)
9. पृष्ठीय तापमान	22^0 सेंटीग्रेड
10. वायुमण्डल के मुख्य अंग–	
नाइट्रोजन	78.5 प्रतिशत
ऑक्सीजन	21.0 प्रतिशत
11. भूपटल के मुख्य अंग–	
ऑक्सीजन	47 प्रतिशत
सिलिकन	28 प्रतिशत
एल्यूमिनियम	08 प्रतिशत
लोहक पदार्थ	05 प्रतिशत
12. भूतल का क्षेत्रफल	148326000 वर्ग कि.मी.
13. भूतल क्षेत्र	29 प्रतिशत
14. जलीय क्षेत्रफल	361740000 वर्ग. कि.मी.

15.	जलीय क्षेत्रफल	71 प्रतिशत
16.	आयतन	1083208850000 घन कि.मी.
17.	सर्वोच्च पर्वत (एवरेस्ट)	8848 मीटर
18.	गहनतम गर्त (प्र. म. मैरीयान)	11033 मीटर
19.	परिक्रमण मार्ग की दूरी	96 करोड़ कि.मी.
20.	उपग्रह संख्या	01 (चन्द्र)

भूपटल

पृथ्वी की जिस ऊपरी सतह पर हम अपना व्यवहार करते हैं अर्थात् जिस पर हम मकान बना कर रहते हैं, खाद्य पदार्थ उपजाते हैं, वही भूपटल का ऊपरी भाग है। संक्षेप में कहें तो हम कह सकते हैं कि मिट्टी व शिलाओं से बने पृथ्वी के बाहरी आवरण को ही भूपटल कहते हैं। इसे ही पृथ्वी की पपड़ी भी कहते हैं। सन् 1928 में एफ. डब्ल्यू. क्लार्क और एच. एस. वाशिंगटन ने पृथ्वी के विभिन्न भागों से बहुत से प्रतिदर्श (SAMPLES) एकत्रित किए और उनका रासायनिक विश्लेषण किया। लगभग 5159 विश्लेषणों के आधार पर पृथ्वी की पपड़ी की जो रासायनिक संरचना बताई गई वह निम्नलिखित सारिणी में दिया गया है।

भूपटल में रासायनिक योग

	तत्व	तत्वों के प्रतीक	मात्रा प्रतिशत में
1.	ऑक्सीजन	O	46.71
2.	सिलिकॉन	Si	27.69
3.	एल्युम्यूनियम	Al	08.07
4.	लोहा	Fe	05.05
5.	कैलसियम	Ca	03.65
6.	सोडियम	Na	02.75
7.	पोटिशयम	K	02.58
8.	मैगनीशियम	Mg	02.08

9.	टाइटेनियम	TI	00.62
10.	हाइड्रोजन	H	00.14
11.	फास्फोरस	P	00.13
12.	कार्बन	C	00.094
13.	मैगनीज	Mn	00.090
14.	गन्धक	S	00.052
15.	बेरियम	Ba	00.050
16.	विरल तत्व		00.244
		योग	100.00

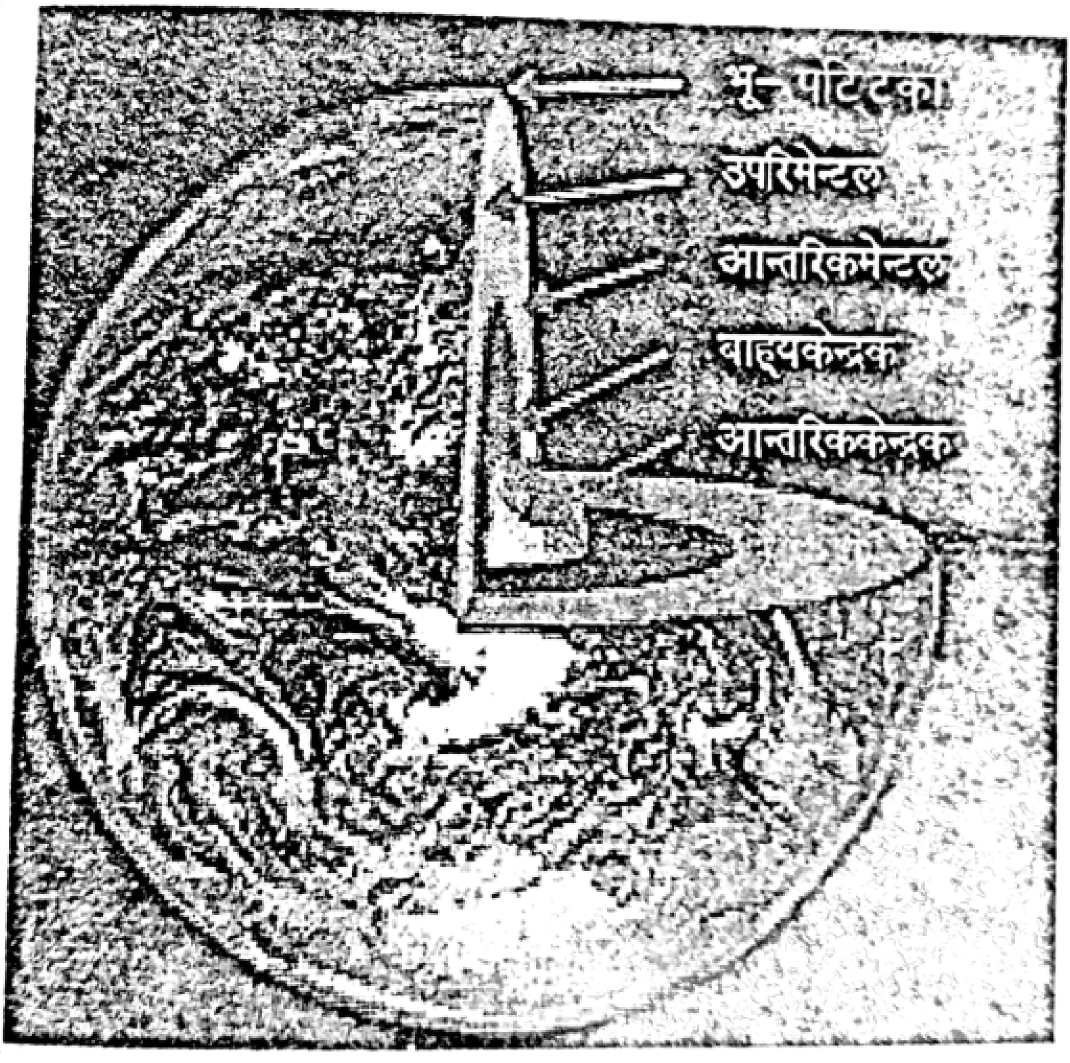
भूपटल के अणुओं का योग

	अणु	अणु सूत्र	मात्रा प्रतिशत में
1.	सिलिका	SiO_2	59.07
2.	ऐल्यूमिना	Al_2O_3	15.22
3.	लोहिक आक्साइड	FeO_3	03.10
4.	लोहस आक्साइड	FeO_2	03.71
5.	मैगनीशिया	MgO	03.45
6.	कैलसियम आक्साइड	CaO	05.10
7.	सोडियम आक्साइड	Na_2O	03.71
8.	पोटेशियम आक्साइड	K_2O	03.11
9.	हाईड्रोजन आक्साइड	H_2O	01.30
10.	कार्बन-डाईआक्साइड	CO_2	00.35
11.	टाइटेनियम आक्साइड	TiO_2	01.03
12.	फासफोरस आक्साइड	P_2O_2	00.30
13.	मैगनीज डाईआक्साइड	MnO_2	00.11
14.	जिरकॉन आक्साइड	ZrO_2	00.04
15.	बोरियम आक्साइड	BaO	0.05
16.	स्ट्राशियम आक्साइड	SrO	0.02
17.	शेष		0.33
		योग	100.00

पृथ्वी का अन्तर्भाग

पृथ्वी के गर्भ में क्या है? वहाँ कैसी स्थिति है? इस विषय में बहुत मतमतान्तर हैं। प्रायः पृथ्वी के गर्भ में गर्म पिघला हुआ लावा अधिकतर लोग मानते हैं। वेदों में भी पृथ्वी को अग्निगर्भा कहकर उद्धृत किया गया है। यथा–**'आग्नेयी पृथिवी'**[1], **'आग्नेयोऽयं लोकः'**[2], **'अग्निगर्भा पृथिवी'**[3]। इससे स्पष्ट होता है कि वैदिक काल में भी यह धारणा थी कि पृथ्वी का गर्भ अग्निवत् है।

पृथ्वी की लगभग 70 कि.मी. गहरी एक नरम परत है जिसको हम भूपृष्ठ कहते हैं। महाद्वीप एवं महासागर इसी पृष्ठभाग में स्थित है। भूकम्प जैसी घटनाएँ भी इसी क्षेत्र में होती हैं। इसके नीचे लगभग 700 कि.मी.



चित्र 16 पृथिवी की आन्तरिक संरचना

1. ताण्डय ब्राह्मण 15।4।8
2. जैमिनीयोपनिषद् 9।37।2
3. शतपथ ब्राह्मण 14।94।21

तक गहरी कठोर चट्टानी परत है यही ज्वालामुखी चट्टानें भी विद्यमान रहती हैं। इसके अन्दर 2000 कि.मी. मोटी परत प्रायः अंगारे के समान गर्म परत है यह अधिक कठोर नहीं है। इसे भीतर का भाग खौलते हुए लोह आदि धातुओं से भरा है। इसके मध्य में एक ठोस गोलाकार पिण्ड भूकेन्द्र में विद्यमान है जिसे हम सौलिड कोर भी कह सकते हैं।

भूकम्प की लहरों, ज्वालामुखियों, खदानों तथा संछिद्रों के अध्ययनोपरान्त पृथ्वी के अन्तर्भाग के सन्दर्भ में दो मुख्य बातें स्पष्ट होती है। पहली यह कि पृथ्वी के अन्दर गहराई की वृद्धि के साथ ही तापमान की वृद्धि भी होती है तथा दूसरी यह कि गहराई के साथ-साथ घनत्व की बढ़ोतरी भी होती है। पृथ्वी के गर्भ की दशा कैसी है? अन्तर्भाग ठोस है, द्रव है या वायत्व (गैसीय) है—इस विषय में वैज्ञानिकों में मतभेद है। लार्ड कैलविन ने दो अंडे लेकर—जिसमें से एक उबला हुआ तथा दूसरा बिना उबला हुआ था—यह दिखाया कि उबला हुआ अंडा ही घूम सकता है। क्योंकि इसका भीतरी भाग ठोस है। पृथ्वी भी अपनी धुरी पर घूमती है। इसके विपरीत दूसरे वैज्ञानिकों ने यह माना कि पृथ्वी का तरल पदार्थ (लावा) इसका प्रमाण है। कुछ का कहना है कि गहराई में अत्यधिक दबाव विद्यमान है जिसके कारण स्थलीय पदार्थ उच्च तापमान पर होने पर भी ठोस वस्तुओं की तरह ही व्यवहार करते हैं। यदि किसी कारण से दबाव में कमी हो जाए तो ये वस्तुएँ तरल रूप में परिवर्तित हो जाएँगी तथा किसी भी दरार आदि के द्वारा बाहर निकल कर धरातल पर बहने लगेंगी। इसी प्रक्रिया को ज्वालामुखी कहते हैं। अतः यह कह सकते हैं कि ज्वालामुखी का लावा यह प्रमाणित नहीं करता कि भूगर्भ में तरल पदार्थ है। अभी कुछ वर्ष पूर्व तक भूविशेषज्ञों का कहना था कि पृथ्वी का अन्तःकेन्द्र निकिल और लोह का बना हुआ है परन्तु आधुनिकतम रूसी वैज्ञानिकों का कहना है कि यह केन्द्र भाग भी शैल पदार्थों से ही बना है, परन्तु यहाँ सर्वाधिक दबाव की स्थिति है जिसके कारण पृथ्वी का आन्तरिक घनत्व भी अधिक है। उत्तरोत्तर अनुसंधानों से नित्य-नूतन विचार भी आते रहते हैं।

चन्द्रमा

चन्द्र ही एक ऐसा ग्रह जिसने सर्वप्रथम मनुष्य को सर्वाधिक आकर्षित किया। भारतीय वैदिक एवं वैदिकेतर साहित्य में शशि, इन्दु, विधु, चन्द्र, कलाधर, हिमगु, शीतांशु, क्षपाकर, हिमांशु, शीतरश्मि, प्रालेयांशु, सोम, शशांक, मृगांक, हिमकर, सुधांशु, रजनीकर आदि नामों से जाना जाता है। चन्द्र ही एक ऐसा पृथ्वी का उपग्रह है जिस पर मनुष्य के चरण पड़ चुके हैं।

प्रजापति ने सर्वप्रथम भूमि अथवा भूमितत्व को उत्पन्न किया। इसके पश्चात् मरुत गण आदि उत्पन्न हुए तदनन्तर प्रजापति ने आदित्य की सृष्टि की तथा आदित्य से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ। इस सन्दर्भ में माध्यन्दिन मुनि का प्रवचन है कि—**सोऽकामयत। भूय एव स्यात् ।प्रजायेतेति। स आदित्येन दिवं मिथुनं सम्भवत्। तत अण्डं समवर्तत। तद् अभ्यभृशत्। रेतो विवृहीति। ततश्चन्द्रमाऽसृज्यत। एष वे रेतः। अथ यदश्रु संक्षरितमासीत, तानि नक्षत्राण्यभवन्। अथ य कपाले रसो लिप्त आसीत् ता अवानतरदिशोऽभवन्। अथ यत् कपामासीत् ता दिशोऽभवन्।**[1] पुनः इसी सन्दर्भ में अन्य विचार भी उपलब्ध होते हैं। यथा—**'आदित्याद्वै चन्द्रमा जायते'**[2] अर्थात् आदित्य से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ। पुनः **'चन्द्रमा मनसो जातः'**[3] अर्थात् चन्द्र का चन्द्रत्व आह्लादकारी गुण प्रजापति के मन से उत्पन्न हुआ। पुराणों ने भी कुछ इसी प्रकार कहा। यथा—**ऋक्षचन्द्रग्रहाः सर्वे विज्ञेयाः सूर्य सम्भवाः**[4]' **'शीतरश्मिः समुत्पन्नः कृतिकासु निशाकरः**[5]'।

चन्द्रोत्पत्ति के सन्दर्भ में पाश्चात्य मत

पाश्चात्य विद्वान मानते हैं कि चन्द्रमा की उत्पत्ति पृथ्वी से हुई। चार्ल्स डारविन महोदय के पुत्र जार्ज एच. डार्विन महोदय के मत को लिखते हुए गेमो कहते हैं कि—

---

1. शतपथ ब्राह्मण 6।1।2।4
2. ऐतरेय ब्राह्मण 40।5
3. तैतिरीय आरण्यक 3।12, ऋग्वेद संहिता 10।90।10
4. वायु पुराण 1।53।28
5. ब्रह्मण्ड पुराण 1।24।130

The Separation of the moon from the parent body of the earth took place during a campartively late stage of evalution.[1]

इमेनुएल-वेलीकोब्सकी महोदय तो इस मत के ठीक विपरीत कहते हैं कि चन्द्र से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। यहाँ पर चन्द्र का स्वल्पाकार सिद्धान्त में बाधक नहीं है, यथा–

The problem of the origin of the moon can be regarded as distrubing to the tidal theory. Being smaller than the earth the moon campleted earlier the process of cooling and shrinking and the lunar valcanoes had already ceased to be active. It is assumed that the moon possesser a higier specific weight than the earth.

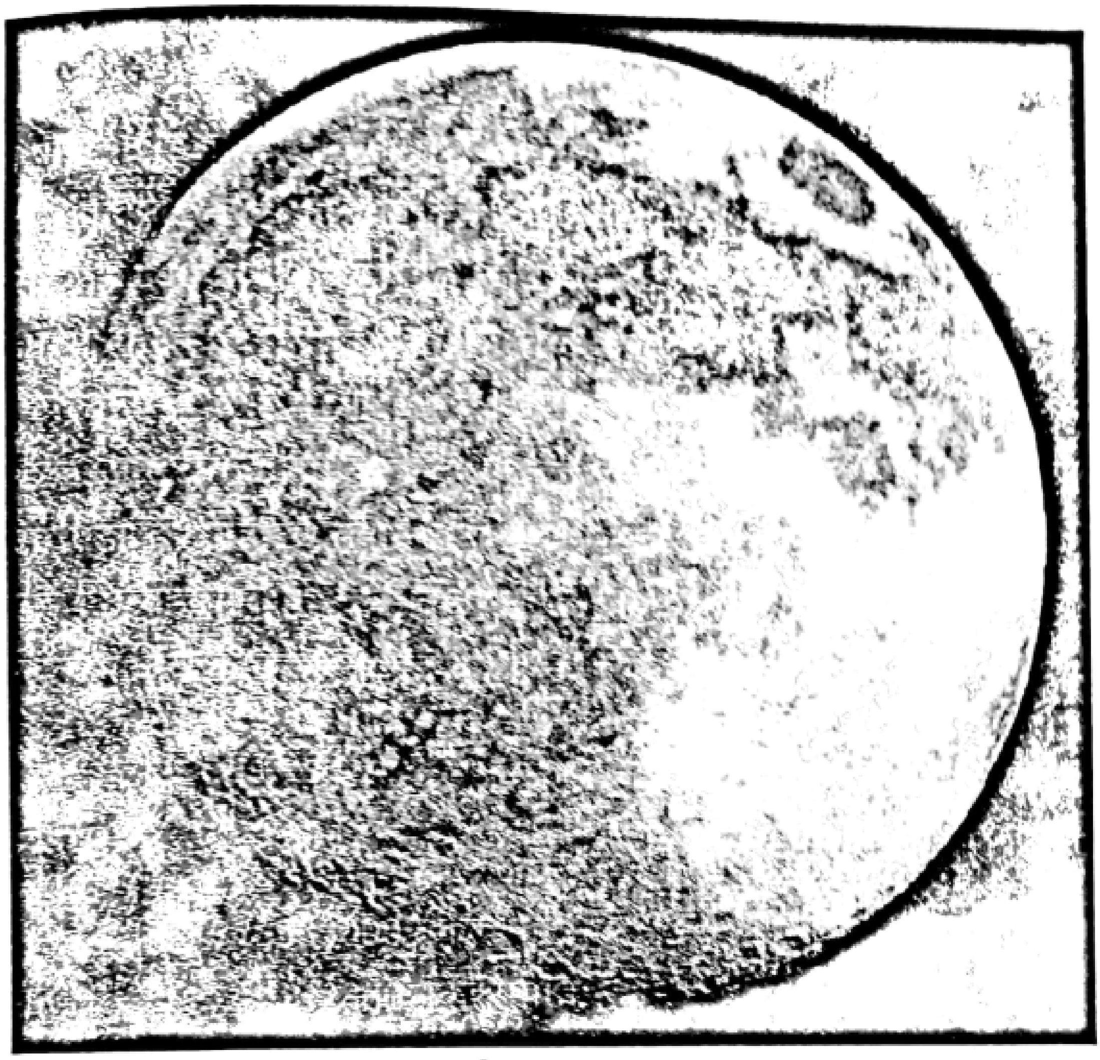
It is assumed that the moon was produced from the superficial layers of the earth's body which are rich in light silicon.

But since the specific weight of the moon is greater than that of the earth it would sum to be move in accord with the theory that the earth was born of the moon despite its smallness.[2]

चन्द्रमा भौतिक स्वरूप

चन्द्र ही पृथ्वी का एकमात्र उपग्रह है। यह पृथ्वी की अपेक्षा बहुत छोटा है। इस ग्रह का कक्षीय भ्रमण एवं अक्षीय भ्रमण तुल्य है। इसको ऐसा भी कह सकते हैं कि जितने समय में चन्द्र अपनी कक्षा में एक चक्कर पूरा करता है उतने ही समय में वह अपने अक्ष पर भी घूमता है। चन्द्रमा लगभग एक किलोमीटर प्रति सेकेण्ड के वेग से 27 दिन 7 घंटे, 43 मिनट, 11 सेकेण्ड में पृथ्वी की एक परिक्रमा पूरी करता है। इतने ही समय में अपने अक्ष (धुरी) पर एक चक्कर काट लेता है। इसीलिए चन्द्र का एक गोलार्द्ध

1. बायोग्राफी ऑफ द अर्थ पृ. 43
2. Warlds is collision, P. 236



चित्र 17 चन्द्रमा

सदा पृथ्वी की ओर रहता है। पृथ्वी से हमें चन्द्र का दूसरा गोलार्द्ध कभी नहीं दिखाई देता है। चन्द्रमा पर वायुमण्डल नहीं है। इसलिए वहाँ जीवन की सम्भावना नहीं है। वहाँ पर जलविहीन मरुस्थल दिखाई देते हैं। चन्द्रमा पर उल्का पिंडों की वृष्टि होती रहती है जिसके कारण वहाँ बहुत गहरे गड्डों (गर्तों) की संख्या अधिक है। उन गर्तों के आकार विभिन्न प्रकार के हैं। चन्द्रमा पर पृथ्वी की अपेक्षा अति उतुङ्ग (ऊँचे) पर्वत शिखर हैं। चन्द्रमा के दक्षिण ध्रुव प्रदेश में सबसे ऊँचा पर्वत शिखर 10660 मीटर का है। यह पृथ्वी के एवरेस्ट से भी ऊँचा है। वायुमण्डल के अभाव में यहाँ ध्वनि का संचार नहीं होता। ध्वनि संचार के लिए किसी माध्यम की आवश्यकता होती है। वायुमण्डल के अभाव के कारण चन्द्रमण्डल से आकाश का वर्ण काला दिखाई देता है। चन्द्रमा में दिन के समय का तापमान 110^0 सेंटीग्रेट

तक पहुँच जाता है जबकि रात का तापमान शून्य से नीचे 180° सेंटीग्रेट तक उतर आता है। पृथ्वी की अपेक्षा चन्द्रमा की गुरुत्वाकर्षण शक्ति 1/6 भाग है अर्थात् जिस वस्तु का वजन पृथ्वी पर 60 कि.ग्रा. होगा उसका वजन चन्द्रमा पर केवल 10 कि.ग्रा. ही होगा। मनुष्य चन्द्र की मिट्टी व पाषाण खंडों को पृथ्वी पर लाया है और चन्द्र की सतह पर कई आधुनिक किस्म के यन्त्र स्थापित किए गए हैं जो नई-नई जानकारियाँ हमें दे रहे हैं। चन्द्र की भूमि पर 'लूनाखोद' जैसी स्वचालित गाड़ियाँ भी उतारी गई हैं।

चन्द्रमा का भौतिक स्वरूप

1.	पृथ्वी से दूरी	384400	कि.मी.
2.	व्यासमान	3476	कि.मी.
3.	अक्षीय भ्रमण काल	27.6	दिन
4.	कक्षीय भ्रमण काल	27.6	दिन
5.	कक्षीय उत्केन्द्रता	0.055	अंश
6.	कक्षीय अवनतता (झुकाव)	5^0 9^0	
7.	द्रव्यमान	0.0123	(पृथ्वी=1)
8.	घनत्व	3.34	(जल=1)
9.	गुरुत्वाकर्षण	0.165	(पृथ्वी=1)
10.	पलायन गति	2.38	(कि.मी./सेकेण्ड)
11.	तापमान, अधिकतम	110^0	सेंटीग्रेट
	न्यूनतम	-180^0	सेंटीग्रेट

पृथ्वीग्रहण

चन्द्रग्रहण की ही तरह पृथ्वीग्रहण भी होता है। वास्तविक रूप में सूर्यग्रहण ही पृथ्वीग्रहण होता है क्योंकि चन्द्र छाया पृथ्वी पर पड़ती है अतः जिस पर छाया पड़ती है उसी का ग्रहण कहलाता है। प्रकाशमान वस्तु पर छाया तो पड़ ही नहीं सकती है। पृथ्वीग्रहण लोक व्यवहार में न होने के कारण हम उसे सूर्यग्रहण के नाम से जानते हैं।

यदि चन्द्र न होता तो

1. पृथ्वी का अहोरात्र मान 11 से 12 घंटे तक का होता।
2. समुद्री ज्वार सदा एक रूप में ही आते। ज्वार की ऊँचाई भी कम होती।
3. गुरुत्वाकर्षण नियम का सत्यापन विलम्ब से होता।
4. चन्द्रवार नहीं होता।
5. चन्द्रमा के बारह महीने नहीं होते।
6. भूमध्यरेखीय भार की अपेक्षा ध्रुवीय भार अधिक होता।
7. सारी रातें अमावस्या की तरह अंधकारमय होती।

सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी की गतियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि एक समय ऐसा आएगा जब ग्रहण नहीं होगा। ऐसा इसलिए होगा क्योंकि चन्द्र स्वकक्षा में पृथ्वी की परिक्रमा करते हुए कुछ दूर हट रहा है और पृथ्वी सर्पिलाकार कक्षा में सूर्य का चक्कर लगाते हुए सूर्य की तरफ जा रही है। यदि यह प्रक्रिया आगे भी जारी रही तो एक समय ऐसा आएगा जब चन्द्र सूर्य का ग्रह होगा और पृथ्वी के उपग्रह के अभाव में ग्रहण का अभाव हो सकता है, परन्तु यह समय बहुत दूर है।

मंगल

मंगल ग्रह का वर्णन पुराणों में बहुत स्थानों पर दृष्टिगोचर होता है। और भौम, लोहितांग, अंगारक, सुरसेनापति, स्कन्द, कुज, भूमिपुत्र, कुमार आदि नामों से इसे जाना जाता है। यथा–

सुरसेनापतिः स्कन्दः पठ्यतेऽङ्गारको ग्रहः।[1]
संयद्वसुश्च यो रश्मिः सा योनिर्लोहितस्य तु।।[2]
अष्टाश्वः काञ्चनः श्रीमान् भौमस्यापि ग्रहो महान्।
पद्मरागारुणैरश्वैः संयुक्तो वह्निसम्भवैः।।[3]
अष्टाश्वः काञ्चनः श्रीमान् भौमस्यापि रथोत्तमः।

---

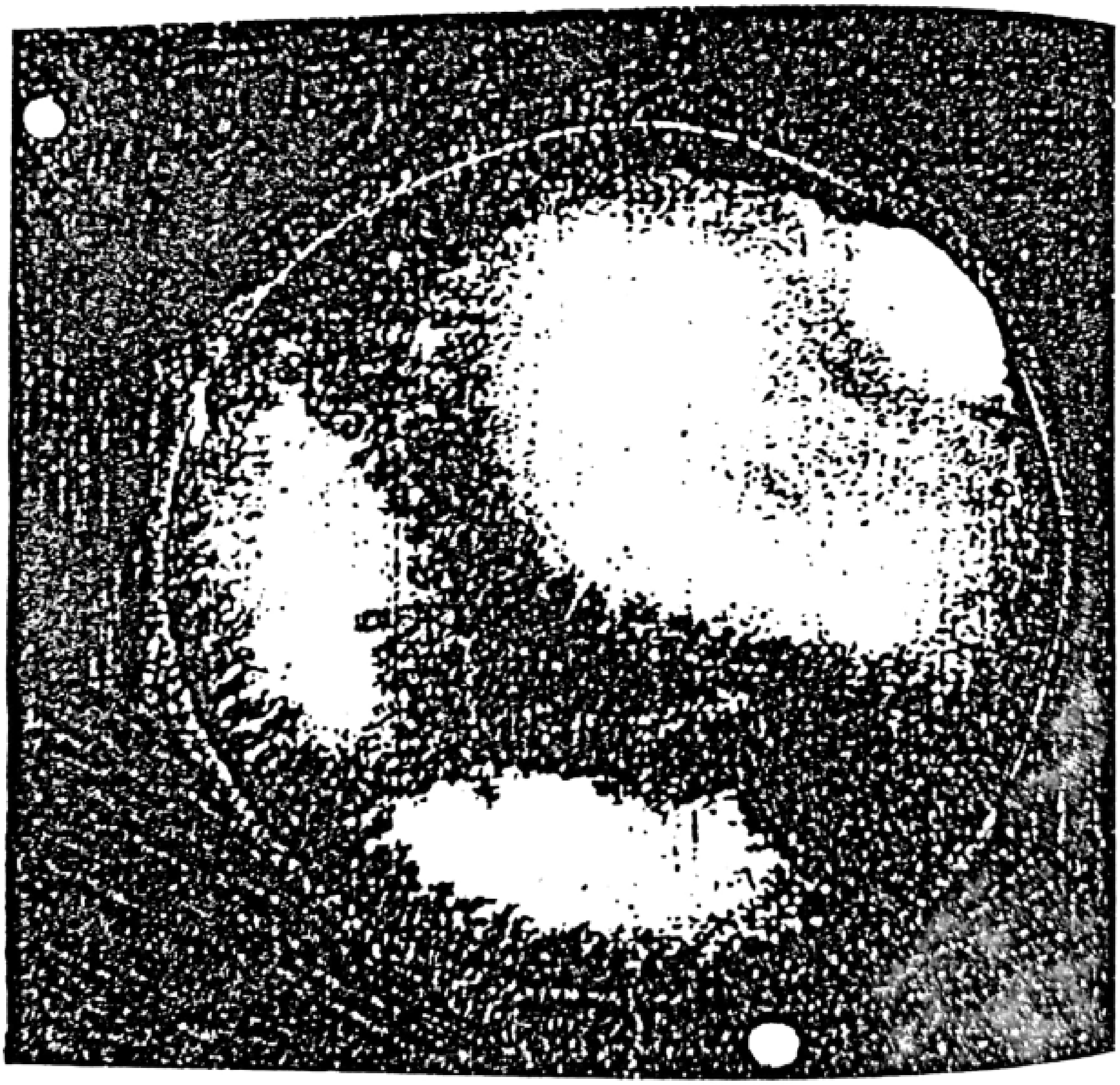
1. ब्रह्माण्ड पुराण पू. 24।48
2. वायु पुराण 53।48
3. विष्णु पुराण 2।12।28

असङ्गैर्लोहितैरश्वैः सर्वगैरग्निसम्भवैः।।

प्रसर्पति कुमारो वै ऋजुवक्रानुवक्रगैः।[1]

अर्थात् अंगारक को सुरसेनापति अथवा स्कन्द भी कहते हैं। संयद्वसु जो रश्मि है वह लोहित (मंगल) की योनि है। आठ अश्वों का सुवर्ण—तुल्य, पद्मराग, अरुण और लोहित वर्ण अग्नि से उत्पन्न अश्वों वाला भौम का रथ है। मंगल (कुमार) के अश्व. ऋतु, वक्र, और अनुवक्र गति से प्रसर्पण करते हैं।

पुराणों में कई नामों में से मंगल का एक नाम भूमिपुत्र भी है। वैज्ञानिक दृष्टि से इसका क्या अभिप्राय है, यह स्पष्ट नहीं है परन्तु इसका वर्णन



चित्र 18 मंगल के साथ ''फोबोस'' और डिमॉस दिखाई दे रहे हैं।

1. ब्रह्माण्ड पुराण पू. 21 I84-85

ज्योतिष शास्त्र के अतिरिक्त अन्य कर्मकाण्डादि ग्रंथों में भी उपलब्ध होना है जहाँ जन्मस्थान अर्थात् उद्‌भूत स्थान पृथ्वी में उज्जैन निर्दिष्ट किया गया है। भारतवर्ष में मंगल को कई स्थानों पर सुरसेनापति अथवा युद्ध का देवता भी कहा गया है। मंगल के लाल रंग के कारण प्राचीन भारतीय इसे अंगारक एवं लोहितांग कहा करते होंगे।

मेरिनर-9 और वाइकिंग टोहक यानों द्वारा भेजे गए चित्रों और आँकड़ों से ज्ञान हुआ कि मंगल का धरातल लाल मिट्टी का है जिसके कारण उसका वर्ण लाल दिखाई देता है। यह लाल मिट्टी सम्भवतः लिमोनाइट (लोहे का एक आक्साइड) है। धरातल पर विभिन्न प्रकार के पत्थरों के टुकड़े बिखरे हुए है। मंगल पर धूल भरी आँधियाँ चलती हैं जिनके कारण वायुमण्डल गुलाबी रंग का दिखाई देता है। इसके वायुमण्डल में 95 प्रतिशत कार्बन डाईआक्साइड के अतिरिक्त नाइट्रोजन, ऑक्सीजन और आर्गन गैसें लगभग समान मात्रा में है। कार्बन-डाईआक्साइड में अन्य गैसें अल्प मात्रा में विद्यमान हैं। वायुदाब बहुत कम है। पृथ्वी के वायुमण्डल के दाब से 260 गुना कम दाब है। इतने कम दाब में बर्फ सीधे ही भाप में परिवर्तित हो जाती है। इसीलिए मंगल की सतह पर पानी नहीं है परन्तु प्रतीत होता है कि मंगल के वायुमण्डल में बादलों में भाप या क्रिस्टलों के रूप में अल्पाति-अल्प मात्रा में पानी विद्यमान है।

मंगल आकार में पृथ्वी से छोटा है। जब यह पृथ्वी के पास होता है तो इसका परीक्षण आसानी से किया जा सकता है। ऐसी स्थिति प्रत्येक दो वर्ष बाद आती है जब मंगल और पृथ्वी सूर्य के एक ही ओर होते हैं। मंगल पर बालू के टीले उसी प्रकार दिखाई देते हैं जैसे पृथ्वी के रेगिस्तानों में। टोहक विमानों द्वारा ज्ञात हुआ कि मंगल की सतह पर सूखी हुई नदी के विस्तृत मैदान, नहरें, गहरे विशाल गर्त और घाटियाँ हैं। एक विशालतम गड्डा (गर्त) लगभग 5000 कि.मी. लम्बा, 120 कि.मी. चौड़ा तथा 6 किमी. गहरा है। मंगल के धरातल का आधा भाग क्रेटरों (गर्तों) से भरा है जबकि दूसरे अर्द्ध भाग पर, सौर-परिवार के सर्वाधिक विशालकाय निष्क्रिय ज्वालामुखी पहाड़ दिखाई देते हैं। सबसे बड़ा ज्वालामुखी 'निक्स ओलम्पिका' या 'ओलिम्पस मॉन्स' अपने आधार पर लगभग 600 कि.मी. चौड़ा है। मंगल

की धुरी भी पृथ्वी की धुरी की भाँति अपने कक्षा तल पर 24^0 के कोण पर झुकी है, इसलिए वहाँ भी पृथ्वी की ही भाँति मौसम होते हैं। वैज्ञानिकों की गणना के अनुसार, मंगल के अक्ष का झुकाव प्रति दस लाख वर्षों में अधिकतम 35^0 से न्यूनतम 15^0 के बीच परिवर्तित होता रहता है। मंगल अत्यन्त निर्बल चुम्बकीय क्षेत्र है। मंगल पृथ्वी के दिनों के अनुसार 687 दिनों में सूर्य की एक परिक्रमा करता है। मंगल के दो उपग्रह हैं।

मंगल का भौतिक स्वरूप

1.	सूर्य से दूरी	225560000 कि.मी.
2.	सूर्य से अधिकतम दूरी	247040000 कि.मी.
3.	सूर्य से न्यूनतम दूरी	207000000 कि.मी.
4.	विषुवत् वृत्तीय व्यास मान	6794 कि.मी.
5.	ध्रुवीय व्यास मान	6752 कि.मी.
6.	कक्षीय परिभ्रमण काल	686.98 दिन
7.	अक्षीय परिभ्रमण काल	24घं.27मि.23 से.
8.	कक्षीय उत्केन्द्रता	$0^0.092$
9.	कक्षीय झुकाव	$1^0 51'$
10.	द्रव्यमान	0.11 (पृथ्वी=1)
11.	आयतन	0.15 (पृथ्वी=1)
12.	अधिकतम तापमान	22^0 सेंटीग्रेड
13.	न्यूनतम तापमान	-70^0 सेंटीग्रेड
14.	कक्षीय गति मान	24.00 (कि.मी./सेकेण्ड)
15.	पलायन गति	5.0 (कि.मी./सेकेण्ड)
16.	गुरुत्वाकर्षण	0.38 (पृथ्वी=1)
17.	घनत्व	0.71 (पृथ्वी=1)
18.	उपग्रह	02

मंगल के चन्द्र

हमारी पृथ्वी का एक चन्द्र है। पूर्व काल में लोगों को सौर-मण्डल के एक

ही चन्द्र की जानकारी थी जो पृथ्वी का था। इसलिए चन्द्र शब्द से एक का ही ज्ञान होता था। इस समय हमारे सौर-मण्डल में चन्द्रों की संख्या प्रायः 65 से अधिक हो गई है। मंगल के 'फोबोस' 'डिमॉस' नाम के दो उपग्रह हैं। यूनानी भाषा में 'फोबोस' शब्द का अर्थ 'भय' और 'डिमॉस' शब्द का अर्थ 'संत्रास' होता है। 'फोबोस' उपग्रह एक अहोरात्र में मंगल की तीन परिक्रमा तथा 'डिमॉस' एक अहोरात्र में पाँच परिक्रमा पूरी करता है। फोबोस उपग्रह को मंगल धीरे-धीरे अपनी ओर खींच रहा है। वैज्ञानिकों का मत है कि आज से 3-7 करोड़ वर्षों के अनन्तर 'फोबोस' मंगल के ऊपर गिरेगा।

मंगल के इन चन्द्रों की खोज आकाश में नहीं हुई, यह एक दिलचस्प बात है। अंग्रेजी के लेखक जोनाथन स्विफ्ट ने 1726 में प्रकाशित अपने कल्पित कथानक 'गुलिवर की यात्राएँ' में जानकारी दी कि लापुत के खगोलविदों ने मंगल ग्रह के इन दो चन्द्रों की खोज की है। स्विफ्ट ने मंगल ग्रह के बारे में जो जानकारी दी, वह काफी हद तक सही है। जोनाथन स्विफ्ट ने कैसे अनुमान लगाया कि मंगल के दो चन्द्र हैं? स्विफ्ट से पूर्व 1610 में ही केपलर अनुमान लगा चुके थे कि मंगल के दो चन्द्र होने चाहिए। क्योंकि इसी साल गैलीलियो ने बृहस्पति के चार चन्द्रों की खोज की थी। केपलर ने सोचा कि चन्द्रों की संख्या ज्यामितीय श्रेणी में बढ़नी चाहिए। पृथ्वी का एक चन्द्र, बृहस्पति के चार चन्द्र तो मंगल के इस आधार पर दो चन्द्र होने चाहिए। बहुत अधिक सम्भव है कि जोनाथन स्विफ्ट को केपलर के इस अनुमान की जानकारी रही हो। जो भी हो, परन्तु स्विफ्ट के समय तक इन दो चन्द्रों को आकाश में किसी ने नहीं देखा। सर्वप्रथम 1877 में इन दो चन्द्रों को आकाश में खोज पाना सम्भव हुआ। अमेरिकी खगोल-विद् 'आसफ हाल' ने कई रातों तक निरन्तर प्रयास करने पर एक शक्तिशाली दूरबीन से मंगल के इन दो चन्द्रों को खोज निकाला।

फोबोस का भौतिक स्वरूप

1. भौम से दूरी	5955 कि.मी.
2. व्यासमान	16 कि.मी.
3. कक्षीय परिभ्रमण काल	7घं.39मि.14 सें.

4.	कक्षीय उत्केन्द्रता	0^0.017
5.	कक्षीय झुकाव	2^0 (अंश)

डिमॉस का भौतिक स्वरूप

1.	भौम से दूरी	23490 कि.मी.
2.	व्यासमान	08 कि.मी.
3.	कक्षीय उत्केन्द्रता	0^0.003
4.	कक्षीय परिभ्रमण काल	30घं.18मि.
5.	कक्षीय झुकाव	7^0

क्षुद्र ग्रह

हमारे सौर-परिवार में ग्रहों, उपग्रहों के अतिरिक्त वैज्ञानिकों ने कुछ अन्य लघुकाय क्षुद्र ग्रहों की खोज की है। इनकी कक्षा मंगल एवं बृहस्पति के मध्य में पड़ती है। सौर-परिवार का सबसे बड़ा ग्रह बृहस्पति है। अन्य ग्रहों के अनुपात में यह सूर्य से बहुत दूर है। सूर्य से पृथ्वी की दूरी लगभग 15 करोड़ किलोमीटर है। इसको यदि हम खगोलीय इकाई मानें तो ग्रहों की दूरी सूर्य से इस प्रकार बैठती है—बुध 0.39, शुक्र 0.72, पृथ्वी 1.00, मंगल 1.52, बृहस्पति 5.20—इन दूरियों पर विचार करें तो ज्ञात होता है कि प्रथम चार ग्रह एक दूसरे के काफी नजदीक हैं परन्तु मंगल और बृहस्पति के मध्य दूरी का अनुपात पूर्व की अपेक्षा काफी अधिक है। इसलिए अठारहवीं सदी के ज्योतिषी सोचने लगे थे कि अवश्य इन दो ग्रहों के बीच कोई ग्रह होना चाहिए। केपलर ने भी यह कल्पना की थी परन्तु कोई भी ज्योतिषी 1800ई. तक किसी ग्रह की खोज नहीं कर पाया। सन् 1801 ई. में इतालवी ज्योतिषी 'पियाजी' ने एक ग्रह की खोज की, जिसकी कक्षा का निर्धारण यूरोप के गणितज्ञ कार्ल फ्रेडरिख गौस ने किया। कक्षा-निर्धारण में ज्ञात हुआ कि यह एक लघुकाय ग्रह है और मंगल तथा बृहस्पति के मध्य के अन्तरिक्ष में विद्यमान होते हुए सूर्य की परिक्रमा कर रहा है। इस ग्रह को 'सेरेस' नाम दिया गया। इस ग्रह का व्यासमान लगभग 800 कि.मी. है। एक वर्ष

के पश्चात् पुनः 1802 ई. में द्वितीय क्षुद्र ग्रह दिखाई दिया। वैज्ञानिकों ने तो एक ग्रह की कल्पना की थी परन्तु वहाँ तो हर वर्ष नए-नए लघुकाय पिंड रूप ग्रह दिखाई देते रहे। अभी तक कोई स्थिर धारणा नहीं है कि कितने लघुकाय ग्रह इस कक्षा में गतिमान होंगे। खगोलज्ञों ने लगभग अभी तक 2000 लघुकाय ग्रहों (क्षुद्रग्रहों) की खोज की है। इन ग्रहों की कक्षा तल क्रान्तिवृत्त से (पृथ्वी की कक्षा से) 43 अंश झुका हुई है। ये ग्रह कभी-कभी मंगल की कक्षा को लांघकर पृथ्वी के समीप आ जाते है। कभी-कभी तो इतने समीप आ जाते हैं कि पृथ्वी के गुरुत्व के कारण ये पृथ्वी में उल्कापात के रूप में परिणत हो जाते हैं। अन्य ग्रहों की तुलना में ये ग्रह अति न्यून हैं इसीलिए इन्हें क्षुद्रग्रह या लघुकाय ग्रह कहते हैं। कुछ वैज्ञानिकों का अनुमान है कि इस कक्षा में कभी एक विशालकाय ग्रह रहा होगा जो वृहस्पति से थोड़ा ही छोटा रहा होगा, किसी कारणवश यह विखण्डित हो गया और इसी विखण्डित ग्रह के टुकड़े क्षुद्रग्रह हो गए।

प्रथम दस क्षुद्रग्रहों का भौतिक स्वरूप

क्र. सं.	ग्रहों का नाम	अन्वेषण वर्ष	सूर्य से दूरी कि.मी.	आवर्तकाल वर्ष	कक्षीय झुकाव	व्यासमान कि.मी.
1.	सिरीज	1801	413513000	4.60	10^0 37'	687
2.	पालाज	1802	414156600	4.61	34^0 48'	450
3.	जूनो	1804	398710200	4.36	13^0 00'	241
4.	वेस्टा	1807	352853700	3.63	7^0 08'	388
5.	ऐस्ट्रेआ	1845	385033700	4.14	5^0 21'	179
6.	हेवे	1847	362346800	3.78	14^0 45'	170
7.	आइरिस	1847	356393500	3.68	5^0 31'	150
8.	लोरा	1847	328879600	3.27	5^0 54	124
9.	मैंटिस	1848	356715300	3.69	5^0 36'	267
10.	हाइगिया	1849	470793400	5.59	3^0 49'	354

पृथ्वी के समीप आने वाले क्षुद्र ग्रह

क्र. सं.	ग्रहों के नाम	अन्वेषण वर्ष	आवर्त काल वर्ष	कक्षीय झुकाव	कक्षीय उत्केन्द्रता
1.	इरोज	1899	1.76	$10^0.8$	0.22
2.	ऐमोर	1932	2.67	$11^0.9$	0.44
3.	पेपोली	1932	1.81	$6^0.4$	0.57
4.	ऐडोनि	1936	2.76	$1^0.5$	0.78
5.	हर्मीज	1936	1.47	$4^0.7$	0.48
6.	इकारस	1949	1.12	$23^0.0$	0.83

बृहस्पति

बृहस्पति हमारे सौर-परिवार का सबसे बड़ा ग्रह है। यह इतना बड़ा है कि हमारी पृथ्वी के आकार के 1300 पिंड इसमें समा सकते हैं। इसको हम ऐसा भी कह सकते हैं कि बृहस्पति नामक थैले में हमारी जैसी 1300 पृथ्वियाँ आ सकती हैं। भारतीय वाङ्मय में इसे सबसे बड़ा होने के कारण ही गुरु कहा गया है। भारतीय आख्यानों के अनुसार गुरु को बृहस्पति, सुराचार्य, देवाचार्य, आंगिरस, बृहत्तेज, जीव आदि कहा गया है। यूनानियों ने इसे 'जुपिटर' कहा। 'जुपिटर' इनका प्रमुख देवता है। वेदों में बृहस्पति को अंगिरस कहा गया है। यथा–

बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन्।
सप्तास्यस्तु विजातो रवेण विसप्तरश्मिरधमत् तमांसि।।[1]

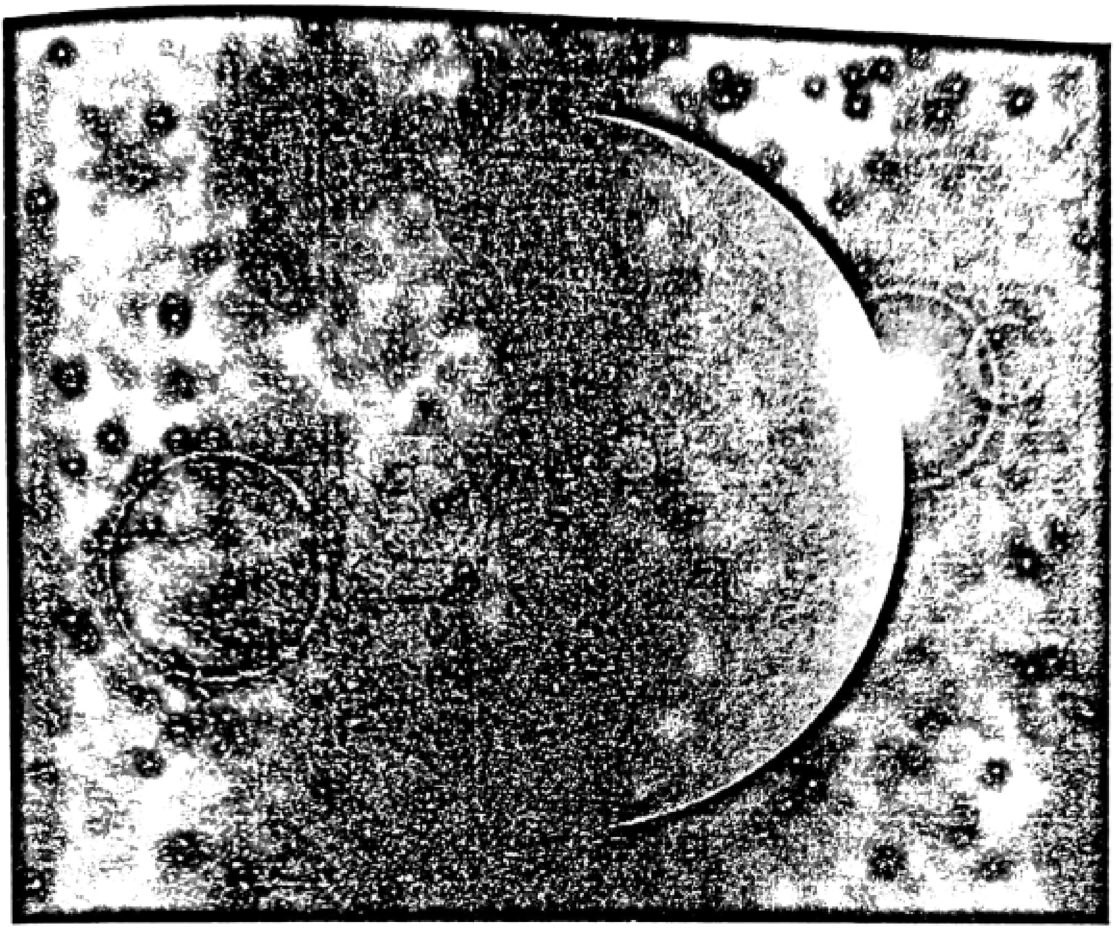
अर्थात् बृहस्पति पहले उत्पन्न होता हुआ, महान् ज्योति से परम व्योम (आकाश) में सात मुख वाला, उच्च जन्म वाला, शब्द के साथ, सात रश्मियों से उसने परे फूँक दिया अंधकारों को।

अन्य ग्रहों की तुलना में बृहस्पति ग्रह का गुरुत्वमान व भौतिक स्वरूप अधिक है। इसीलिए यह गुरु हो गया। आधुनिक वैज्ञानिकों के अनुसार गुरु का घनत्व सूर्य से किंचिद ही न्यून है। बृहस्पति की उत्पत्ति तिष्य नक्षत्र से हुई ऐसा कुछ लोगों का कहना है। यथा–

1. ऋग्वेद 4।50।4

"बृहस्पतिः प्रथमं जायमानः तिष्यं नक्षत्रमभिसम्बभूव।"[1]

बृहस्पति की उत्पत्ति पुष्यनक्षत्र से हुई यह मत समीचीन प्रतीत नहीं होता है। इसका प्रथम दर्शन पुष्यनक्षत्र में हुआ होगा, इसलिए ऐसा कहा

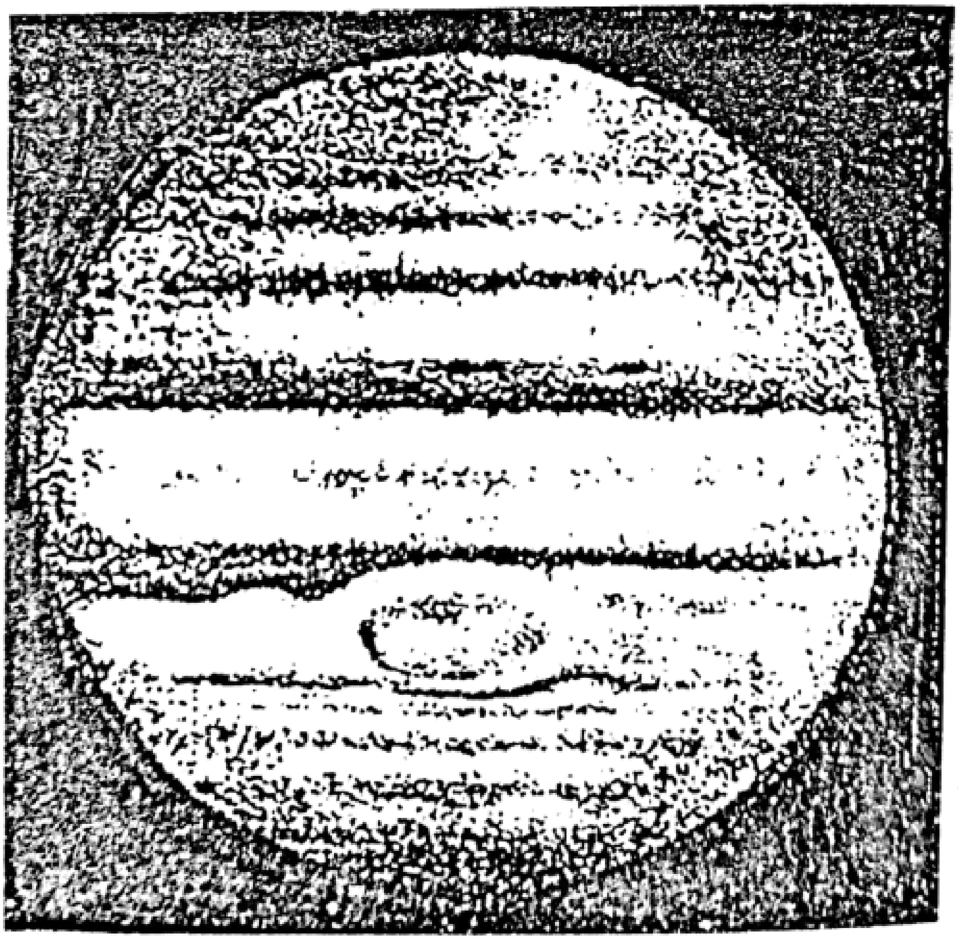


चित्र 19A बृहस्पति ग्रह के साथ बृहस्पति के उपग्रह भी दिखाई दे रहे हैं।

गया होगा। पहले किसी ने कल्पना की थी कि बृहस्पति भी सूर्य के सदृश ही है परन्तु आज यह स्पष्ट हो चुका है कि सूर्य से बृहस्पति की स्थिति भिन्न है। सर्वप्रथम तो यह कि सूर्य का पिण्ड उष्ण तथा बृहस्पति का पिण्ड शीतल (ठण्डा) है। इसके चारों तरफ का वायुमण्डल हजारों किलोमीटर ऊँचा है। इसमें मुख्य रूप से हाइड्रोजन, मीथेन तथा एनोनिया जैसी विषैली गैसें हैं। आक्सीजन का सर्वथा अभाव है। बृहस्पति का गुरुत्व बल पृथ्वी की अपेक्षा 2.64 गुना अधिक है। अतः पृथ्वी के किसी भी वस्तु का भार, गुरु पर 2.64 गुना अधिक होगा। बृहस्पति प्रायः 78 करोड़ कि.मी. की दूरी

1. तैत्तीरिय ब्राह्मण 3।1।1

से सूर्य की परिक्रमा करता है। बृहस्पति की कक्षा विशाल है क्योंकि 13 कि.मी. प्रति सेकेंड के वेग से भी यह लगभग 12 साल में अपनी परिक्रमा पूरी करता है। कह सकते हैं कि पृथ्वी के 12 वर्षों के बराबर बृहस्पति का एक वर्ष होता है। अर्थात् इसको हम ऐसा भी कह सकते हैं कि हमारी पृथ्वी के लगभग 1036 दिनों का बृहस्पति का एक वर्ष होता है। जैसा कि हमने आपको कहा कि गुरु पृथ्वी से 1300 गुना बड़ा है परन्तु यह इतना गुना भारी नहीं है क्योंकि इसका घनत्व पृथ्वी के घनत्व से कम है। यदि हम कहें कि पानी का घनत्व 1.0 है तो पृथ्वी का घनत्व इसी अनुपात में 5.5 होता है। जबकि बृहस्पति का घनत्व 1.3 ही है, फिर भी बृहस्पति पृथ्वी से 310 गुना अधिक भारी है। अगर बृहस्पति को छोड़कर सभी ग्रह-उपग्रहों का एक कल्पित पिण्ड भी बना लें तो भी बृहस्पति इस पिंड से दुगुना बड़ा होगा। सूर्य बृहस्पति से 1047 गुना बड़ा है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि बृहस्पति वास्तव में कितना बड़ा है। इतना बड़ा होने पर भी यह ग्रह प्रायः 10 घंटे में अपनी धुरी पर एक चक्कर



चित्र 19B बृहस्पति

पूरा कर लेता है। कह सकते हैं कि इस ग्रह का दिन मात्र 10 घं. का होता है।

अभी तक के अनुसंधान से ज्ञात हुआ है कि बृहस्पति के कुल 39 उपग्रह हैं। सर्वप्रथम दूरबीन के आविष्कारक गैलीलियो ने ही गुरु के 4 चन्द्रों (उपग्रहों) को खोजा। इसी खोज के आधार पर मंगल के दो उपग्रह खोजे गए। बृहस्पति के चन्द्रों में से चार ही चन्द्र बड़े हैं। शेष चन्द्र बहुत छोटे हैं। इन चार चन्द्रों में भी दो चन्द्र तो बुध से भी बड़े हैं। इनके नाम हैं–गायनेमीड और कैलिस्टो। ईओ और यूरोपा नामक चन्द्र भी बड़े चन्द्रों में से हैं परन्तु इनमें से भी ईओ बड़ा है। यह तो हमारे चन्द्र से भी बड़ा है। कुछ वैज्ञानिकों का कहना है कि बृहस्पति के चार चन्द्र उलटी दिशा में परिक्रमा करते हैं। निम्नलिखित भौतिक विवरण से ग्रह का प्रायः स्पष्ट स्वरूप ज्ञात होता है।

बृहस्पति का भौतिक स्वरूप

1. सूर्य से दूरी	778333000 किलोमीटर
2. विषुवद् वृत्तीय व्यासमान	142880 किलोमीटर
3. ध्रुवीय व्यासमान	133540 किलोमीटर
4. अक्षीय परिभ्रमण काल	9.9 घंटे
5. कक्षीय परिभ्रमण काल	11.9 वर्ष
6. द्रव्यमान (भार)	318.4 (पृथ्वी=1)
7. कक्षीय उत्केन्द्रता	0^0.048
8. कक्षीय अवनतता (झुकाव)	1^0 18'
9. कक्षीय गति	13.00 (कि.मी./सेकेण्ड)
10. पलायन गति	60.2 (कि.मी./सेकेण्ड)
11. गुरुत्वाकर्षण	02.64 (पृथ्वी=1)
12. घनत्व	0.23 (पृथ्वी=1)
13. पृष्ठीय तापमान	-140^0 सेंटीग्रेट
14. उपग्रह	39

बृहस्पति के प्रमुख उपग्रहों का भौतिक स्वरूप

क्र. सं.	उपग्रहों के नाम	अन्वेषक का नाम	अन्वेषण वर्ष	ग्रह से दूरी (कि.मी.)	व्यास (कि.मी.)	कक्षीय उत्केन्द्रता	कक्षीय झुकाव	आवर्त काल दिनों में
1.	ईओ	गैलीलियो	1610	421760	3657	00.00	0°00'	1.769
2.	यूरोपा	गैलीलियो	1610	671050	3100	00.00	0°00'	3.551
3.	गायनेमीड	गैलीलियो	1610	1070400	5270	00.00	0°00'	7.155
4.	कैलिस्टो	गैलीलियो	1610	1882600	5000	00.00	0°00'	16.689
5.	एलमथिया	बर्नाड	1892	181000	240	00.003	0°24'	00.498
6.	लीडा	–	–	11100000	15	00.00	0°00'	239.00
7.	हिमालि	पेरीने	1904	11477600	100	00.158	27°38'	250.566
8.	लाइसिथिआ	पेरीने	1905	11720250	20	00.207	24°46'	259.219
9.	एलारा	निकल्सन	1938	11736700	30	00.130	29°01'	259.653
10.	एनाकी	निकल्सन	1951	21200000	20	00.169	147°00'	631.000
11.	कारमे	निकल्सन	1938	22600000	20	0.207	164°00'	692.000
12.	पासीफे	मेलोते	1908	23500000	20	0.378	145°00'	744.000
13.	सिनोपे	निकल्सन	1914	23600000	20	2.275	153°00'	758.000
14.	थैबे	–	–	22000	100	–	–	0.675
15.	एड्रास्टिया	–	–	129000	1875	–	–	0.298
16.	मैटिस	–	–	128000	20	–	–	0.295

शनि

'शनैश्शनैश्चलतीति शनैश्चरः'' अन्य ग्रहों की अपेक्षा आकाश में जो ग्रह धीरे-धीरे चलता हुआ दिखाई दिया, उसे ही हमारे आचार्यों ने शनैश्चर अथवा शनि कहा। धीरे-धीरे चलने का पर्याय मन्द भी है। इसलिए इसको मन्द भी कहा गया। भारतीय पौराणिक साहित्य में इसे—सौरि, अर्कपुत्र, आर्कि, असित, क्रोड, विरूप, यम, पिंगल, बभ्रु आदि नामों से जाना जाता है। जैसा कि पुराणों में मिलता भी है—

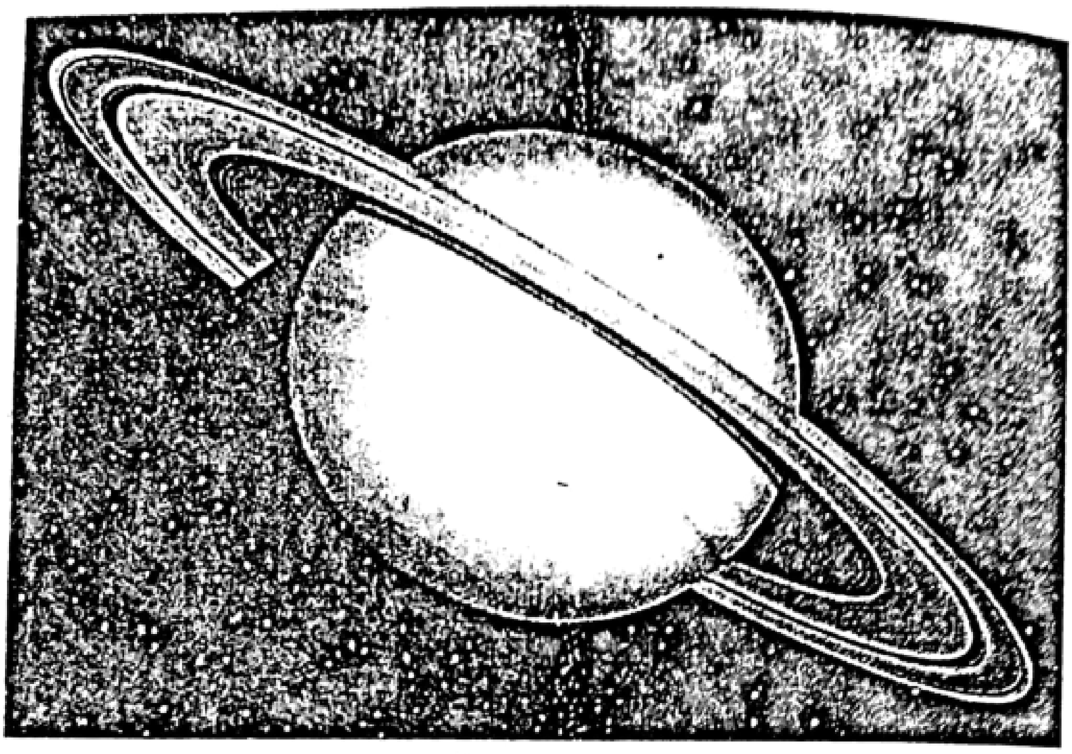
कोणस्थः पिंगलो बभ्रुः कृष्णो रोद्रोऽन्तको यमः
शौरिः शनैश्चरो मन्दः पिपलादेन संस्तुतः।।
रुद्रो वैवस्वतः साक्षाद् यमो लोक प्रभुः स्वयम्।
महाग्रहो द्विजश्रेष्ठो मन्दगामी शनैश्चरः।।[1]

पाश्चात्य ज्योतिषि इसे 'सैटर्न' कहते हैं। यूनानी आख्यानों में सैटर्न जूपिटर के पिता हैं जबकि भारतीय आख्यानों में इसे सूर्यपुत्र कहा गया है। रोमन लोग शनि को कृषि का देवता मानते हैं।

हमारे सौर-परिवार में बृहस्पति के पश्चात सबसे बड़ा ग्रह शनि आकाश में अत्यन्त सुन्दर एवं रमणीक दिखता है। यह हमारी पृथ्वी से 750 गुना बड़ा एवं सूर्य से 143 करोड़ कि.मी. दूर है। शनि प्रति सेकेंड 9.6 कि.मी. की गति से सूर्य की परिक्रमा प्रायः 30 वर्षों में पूरी करता है। सूर्य से बृहस्पति जितना दूर है प्रायः उतना ही दूर बृहस्पति से शनि है। जैसा कि आपको पहले बताया जा चुका है कि हमारी पृथ्वी से यह ग्रह 750 गुना बड़ा है अर्थात् शनि के पिण्ड में हमारी 750 पृथ्वियाँ समा सकती हैं परन्तु यह इतनी पृथ्वियों के बराबर भारी नहीं है। यह केवल 95 पृथ्वियों के बराबर भार का ग्रह है। इस ग्रह का घनत्व जल के घनत्व से कम है जहाँ जल का घनत्व=1 है वहीं इस ग्रह का घनत्व=0.7 घन सेंटीमीटर है। अगर शनि को किसी विशालकाय महासागर में डाल दिया जाए तो वह डूबेगा नहीं, बल्कि तैरने लग जाएगा। हमारे सौर-परिवार में सबसे कम घनत्व शनि का ही है। शनि ग्रह का दिन हमारे दिन से छोटा होता है क्योंकि इस ग्रह का अक्ष-भ्रमण पृथ्वी के हिसाब से 10 घंटे, 14 मिनटों का ही है। अतः इसको ऐसा भी कह सकते हैं कि शनि के एक वर्ष में पृथ्वी के 25300 दिन होते हैं। सूर्य से अधिक दूर होने के कारण शनि के वायुमण्डल का तापमान -155^0 सेंटीग्रेड के आस-पास होता है। बृहस्पति की भाँति शनि का वायुमण्डल भी हाइड्रोजन, हीलियम, मीथेन, तथा एमोनिया गैसों से बना है। शनि के सतह की अभी तक अधिक जानकारी ज्ञात नहीं हो पाई है, मात्र इसके चमकीले वायुमण्डल को हम देख सकते हैं। अभी तक की

1. ब्रह्माण्ड पुराण 1।24।49-50

जानकारी के अनुसार चन्द्र, मंगल एवं शुक्र की सतह की तरह शनि की सतह पर उतरना सम्भव नहीं है।



चित्र 20 शनि

शनि के अभी तक 20 उपग्रह खोजे जा चुके हैं। और भी उपग्रह हो सकते हैं। टाइटन इसका सबसे बड़ा (हमारे चन्द्र से भी बड़ा) एवं सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपग्रह है। यह बृहस्पति के 'गायनीमीड' उपग्रह से थोड़ा ही छोटा है। पहले इसको ही सबसे बड़ा माना जाता था। टाइटन का मौजूद घना वायुमण्डल मुख्य रूप से नाइट्रोजन से बना है तथा पृथ्वी के वायुमण्डल से अधिक घना एवं भारी है। जहाँ शनि की सतह पर अन्तरिक्ष यान उतरना सम्भव नहीं है वहीं टाइटन की सतह पर अन्तरिक्ष यान उतारा जा सकता है। शनि ग्रह अपने वलयों के कारण ही सबसे आकर्षक लगता है। सबसे पहले वलयों के सहित शनि को गैलीलियो ने देखा था। ये वलय इसके विषुवत् वृत्तीय धरातल में ही परिक्रमा करते हैं। बृहस्पति, यूरेनस, नेपच्यून के भी वलय हैं परन्तु शनि के वलय अधिक विस्तृत एवं सुस्पष्ट हैं। इसी तरह बुध के भी वलय देखे गए हैं। शनि के वलय छोटे-छोटे ठोस टुकड़ों के बने हो सकते हैं। ये बर्फ से आच्छादित रहते हैं इसलिए खूब चमकते हुए दिखाई देते हैं। खगोलविदों का कहना है कि कभी शनि के समीप एक उपग्रह रहा होगा जो विषुवतीय धरातल में परिक्रमा करता रहा होगा। किसी

कारणवश वह उपग्रह विखंडित हो गया और उसके छोटे-छोटे टुकड़ों ने वलय का रूप धारण कर लिया। कुछ का कहना है कि शनि के उत्पत्ति काल से ही वलय मौजूद हैं और इन्हीं वलयों से उपग्रह बनते हैं। शनि के अवशिष्ट वलय भी भविष्य में उपग्रहों का रूप धारण कर सकते हैं। सम्भवतः इसी प्रकार के वलयों से शनि के उपग्रह बने होंगे।

शनि का भौतिक स्वरूप

1.	सूर्य से दूरी	1426978000 किलोमीटर
2.	विषुवद् वृत्तीय व्यास	120500 किलोमीटर
3.	ध्रुवीय व्यासमान	106900 किलोमीटर
4.	अक्षीय परिभ्रमण काल	10.3 घंटे
5.	कक्षीय परिभ्रमण काल	29.5 वर्ष
6.	द्रव्यमान	95.2 (पृथ्वी=1)
7.	कक्षीय उत्केन्द्रता	$0^0.052$
8.	कक्षीय अवनतता (झुकाव)	2^0 29'
9.	कक्षीय गति	9.6 (कि.मी./सेकेण्ड)
10.	पलायन गति	36.2 (कि.मी./सेकेण्ड)
11.	गुरुत्वाकर्षण	01.17 (पृथ्वी=1)
12.	घनत्व	0.13 (पृथ्वी=1)
13.	पृष्ठीय तापमान	-155^0 सेंटीग्रेट
14.	उपग्रह	30

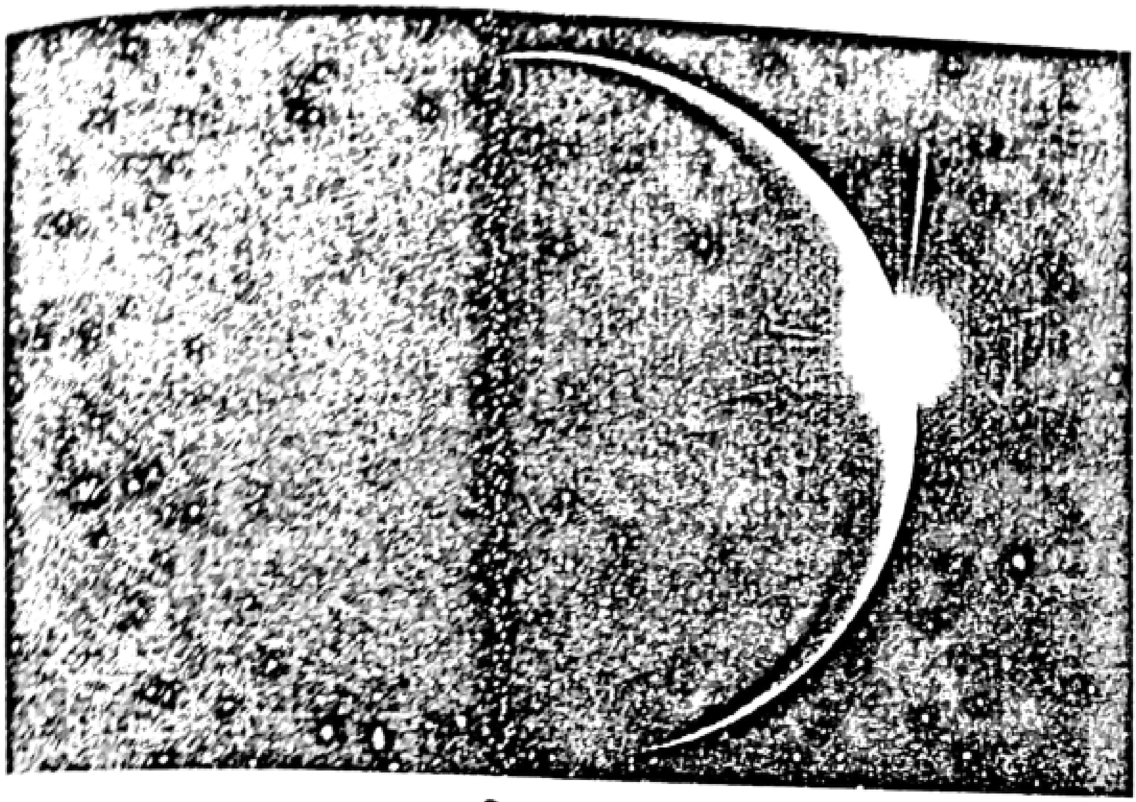
शनि के प्रमुख उपग्रहों का भौतिक स्वरूप

क्र. सं.	उपग्रह नाम अन्वेषक	अन्वेषण वर्ष	ग्रह से दूरी (कि.मी.)	व्यास (कि.मी.)	कक्षीय उत्केन्द्रता	कक्षीय झुकाव	आवर्त काल दिनों में
1.	एललस (एस. 28)	1980	137170	800	–	–	–
2.	प्रोमेथस (एस. 27)	1980	139353	220	–	–	–
3.	पैन्डोरा (एस. 26)	1980	141700	200	–	–	–

4. एपिमैथस (एस. 3)	1980	151422	1980	–	–	–
5. एल-9	1980	151422	9000	–	–	–
6. जेनस	1980	159000	300	–	–	0/17/59
7. मीमास/हर्शेल	1780	185590	500	0.02.0	$1^{0}31'$	0/22/37
8. एनसीलेडस/हर्शेल	1780	238100	600	0.004	$0^{0}01'$	1/8/53
9. टेथीस/कासिनी	1684	294700	1000	0.00	$1^{0}06'$	1/21/19
10. एस. 25	1980	294700	30से40	–	–	–
11. एस. 13	1980	294700	30से40	–	–	–
12. डिओने/कासिनी	1684	377500	800	0.002	$0^{0}01'$	2/17/41
13. रीआ/कासिनी	1672	527200	1600	0.001	$0^{0}21'$	4/12/25
14. टाइटन/हाइगेन्स	1655	1221620	5400	0.029	$0^{0}21'$	15/22/42
15. हाइपेरियन/बाड	1848	1483000	500	0.104	$0^{0}26'$	21/6/30
16. इआपेटस/कासिनी	1671	3560200	1600	0.028	$14^{0}43'$	79/7/56
17. फोबे/पिकरिंग	1898	12951440	200	0.163	150^{0}	550/8/5
18. पेन	–	–	20	–	–	–

अरुण (यूरेनस)

हमारे सौर-परिवार में यह ग्रह भी एक विशाल-काय ग्रह है। बृहस्पति एवं शनि के पश्चात् आकार में इसी ग्रह का स्थान आता है। यूरेनस, नेपच्यून, प्लूटो ग्रहों की खोज में गैलीलियो के दूरबीन आविष्कार एवं केपलर के ग्रहगति के नियमों का तथा न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त का सर्वाधिक योगदान है। इंगलैंड के एक ज्योतिषी विलियम हर्शेल ने 13 मार्च 1781 को घोषणा की कि मैंने एक ग्रह की खोज की है। इंग्लैंड के गणितज्ञ एवं ज्योतिषी इससे पहले इनका नाम नहीं जानते थे क्योंकि हर्शेल तो मूल रूप से संगीत के प्रेमी थे। ज्योतिष का अध्ययन तो इन्होंने शौकिया शुरू किया था। इन्हें दूरबीनों को बनाने का शौक था। अपनी स्वनिर्मित शक्तिशाली



चित्र 21 अरुण

दूरबीनों से ही इन्होंने इस ग्रह की खोज की। सौरमण्डल का यह तीसरा बड़ा ग्रह है। इसका व्यासमान लगभग 50 हजार कि.मी. है। यह पृथ्वी से प्रायः चौगुना बड़ा ग्रह है। इसका आयतन पृथ्वी से 64 गुणा अधिक है। यह प्रायः 7 कि.मी. प्रति सेकेण्ड के वेग से सूर्य की परिक्रमा कर रहा है, इस परिक्रमा को यह 84 वर्ष में पूरा करेगा। इस ग्रह का अक्षीय वेग अधिक है। इसलिए यह हमारी पृथ्वी के हिसाब से 11 घंटों में अपनी धुरी पर एक चक्कर काट लेता है। यह ग्रह भी कुछ-कुछ बृहस्पति और शनि की ही तरह है। इसका बाहरी वायुमण्डल ही हमको दिखाई देता है। यह घना वायुमण्डल मुख्यतः हाइड्रोजन और मीथेन गैसों से बना है। सूर्य का ताप इस ग्रह तक बहुत कम पहुँच पाता है इसलिए इसका पृष्ठीय तापमान प्रायः -180^0 सेंटीग्रेड के आसपास रहता है। हमारे सौर-परिवार में प्रायः सभी ग्रह अपने अक्ष पर झुके हुए परिक्रमा करते हैं, जिसमें सर्वविदित है कि पृथ्वी अपने अक्ष पर 23.5 अंश झुककर सूर्य की परिक्रमा करती है। एकमात्र यूरेनस ऐसा ग्रह है जो सर्वाधिक अर्थात् 98 अंश अपने अक्ष पर झुककर सूर्य की परिक्रमा करता है। अतः हम ऐसा भी कह सकते हैं कि इस कारण जैसी स्थिति पृथ्वी के ध्रुवीय प्रदेशों में रहती है उसी प्रकार की स्थिति यूरेनस

के विषुवत पर रहती होगी।

अभी तक यूरेनस के 15 उपग्रहों (चन्द्रों) की खोज हो चुकी है। इसका सबसे बड़ा चन्द्र 'टाइटेनिया' है जिसका व्यास प्रायः 1600 कि.मी. के आसपास है। इस ग्रह के पाँच ही चन्द्र बड़े हैं, शेष छोटे-छोटे हैं। अन्य ग्रहों के चन्द्रों की तरह यूरेनस के चन्द्र भी विषुववृत्त के समतल में परिक्रमा करते हैं। यूरेनस सर्वाधिक अक्षीय झुकाव के कारण इसके चन्द्र अन्य ग्रहों के साथ समकोण बनाए हुए परिक्रमा करते हैं। यूरेनस के चन्द्रों को यदि यूरेनस के उत्तरी ध्रुव के ऊपर से देखा जाए तो अन्य ग्रहों के चन्द्रों की ही भाँति परिक्रमा करते हुए दिखाई देंगे परन्तु पृथ्वी से उल्टी दिशा में चक्कर काटते हुए दिखाई देते हैं।

अरुण (यूरेनस) का भौतिक स्वरूप

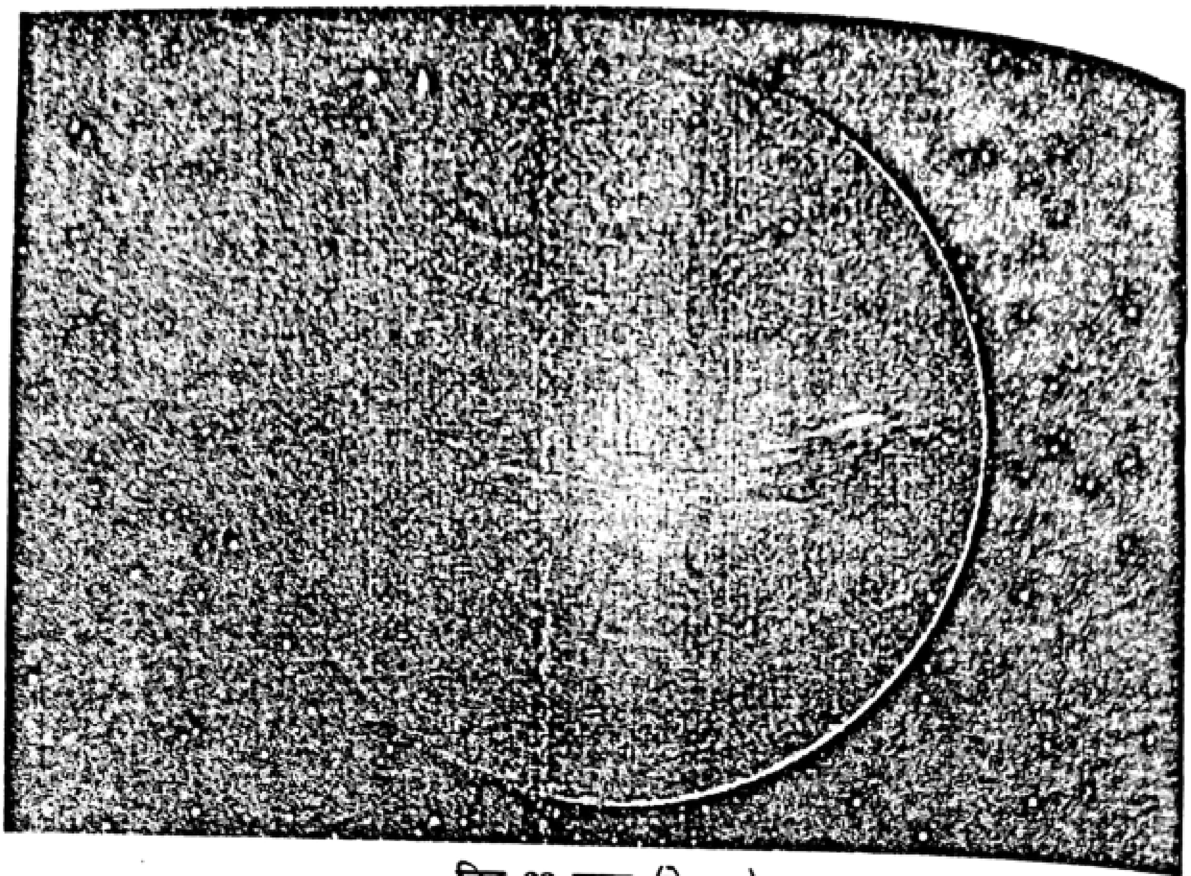
1.	सूर्य से दूरी	2870991000 किलोमीटर
2.	विषुवद् वृत्तीय व्यास	51400 किलोमीटर
3.	ध्रुवीय व्यासमान	50300 किलोमीटर
4.	अक्षीय परिभ्रमण काल	10 घंटे 49 मिनट
5.	कक्षीय परिभ्रमण काल	84.0 वर्ष
6.	द्रव्यमान	14.6 (पृथ्वी=1)
7.	अक्षीय झुकाव	98^0
8.	पृष्ठीय तापमान	-180^0 सेंटीग्रेट
9.	कक्षीय उत्केन्द्रता	0.044 अंश
10.	कक्षीय झुकाव	0^0 66'
11.	कक्षीय गति	6.8 (कि.मी./सेकेण्ड)
12.	पलायन गति	22.4 (कि.मी./सेकेण्ड)
13.	गुरुत्वाकर्षण	1.05 (पृथ्वी=1)
14.	घनत्व	0.23 (पृथ्वी=1)
15.	उपग्रह	21

अरुण के प्रमुख उपग्रहों का भौतिक विवरण

क्र. सं.	उपग्रह नाम	अन्वेषक नाम	अन्वेषण वर्ष	ग्रह से दूरी (कि.मी.)	व्यास (कि.मी.)	कक्षीय उत्केन्द्रता	कक्षीय झुकाव	आवर्त काल दिनों में
1.	मिरान्डा	क्वीपर	1948	129390	480	0.01	0^0	1.41348
2.	एरियल	लासेल	1851	191020	1158	0.003	0^0	2.52038
3.	अमब्रियल	लासेल	1851	266300	1172	0.004	0^0	4.14418
4.	टाइटेनिया	हर्शेल	1787	425910	1580	0.002	0^0	8.70587
5.	आवेरान	हर्शेल	1787	583520	1524	0.001	0^0	13.46324
6.	बेलिन्द्रा	–	–	49770	50	–	–	0.33503
7.	कार्डलिया	–	–	53790	50	–	–	0.37641
8.	आफलिया	–	–	59170	50	–	–	0.43450
9.	डेस्डिमोना	–	–	61780	60	–	–	0.46357
10.	रोसालिन्ड	–	–	62680	60	–	–	0.47365
11.	क्रैसिडा	–	–	64350	80	–	–	0.49307
12.	बाइन का	–	–	66090	80	–	–	0.51320
13.	जूलियट	–	–	69940	60	–	–	0.55846
14.	पोर्सिया	–	–	75260	50	–	–	0.62353
15.	पक	–	–	86010	170	–	–	0.76183

वरुण (नेपच्यून)

यूरेनस की गति का सम्यक् अध्ययन करते हुए सौरमण्डल के इस आठवें ग्रह की खोज सन् 1846 में फ्रांस के खगोलविद् 'लवेरिये' ने अपने कागज के पन्नों पर ही कर ली थी। गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त से यह ज्ञात होता है कि विश्व का हर पिंड एक दूसरे से आकर्षित होता है। प्रत्येक ग्रह अपने सूर्य का चक्कर लगाता है परन्तु यह नहीं भूलना चाहिए कि ग्रह को उसका उपग्रह अथवा सौर-परिवार का अन्य ग्रह आकर्षित ही नहीं करता, अपितु हर पिंड अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुरूप सबको अपने प्रति आकर्षित करता है। गणितज्ञों ने यूरेनस की खोज के पश्चात् जब आकाश के सारे ग्रहों



चित्र 22 वरुण (नेपच्यून)

उपग्रहों को ध्यान में रखकर यूरेनस की कक्षा व गति निर्धारित की तथा कुछ समय के पश्चात् दिखाई दिया कि गणित के अनुसार ग्रह को जहाँ होना चाहिए था वहाँ नहीं है। इस अन्तर को पाकर फ्रांस के खगोलविद् 'लवेरिये' गम्भीरता से विचार करने लगे। अन्त में वे इस नतीजे पर पहुँचे कि इसके परे (बाहर) भी कोई महत्वपूर्ण बड़ा पिंड होना चाहिए। लवेरिये ने अपने ही कमरे में कागज के पन्नों पर एक कल्पित ग्रह की कल्पना की और उसकी गति निर्धारित करके कक्षा का निर्धारण करने लगे। अन्ततः उन्होंने इस कार्य में सफलता पाई परन्तु वे आकाश में उसको प्रत्यक्ष नहीं कर पाए क्योंकि उस समय पेरिस (फ्रांस) में कोई शक्तिशाली दूरबीन नहीं थी। अतः उन्होंन बर्लिन के खगोलविद प्रो. जोहान गाल्ले को पत्र लिखकर एक नए ग्रह की गति एवं स्थिति की जानकारी दी। पत्र पाकार प्रो. जोहान ने अपनी दूरबीन से आकाश के उस भाग की ओर देखा जिसको 'लवेरिये' ने इंगित किया था। उन्होंने पाया कि अवश्य वहाँ एक छोटा तारा दिखाई दे रहा है, दो तीन दिन लगातार देखने से ज्ञात हुआ कि यह तारा नहीं कोई ग्रह है। यह वही ग्रह है जिसका अनुमान 'लवेरिये' ने किया था। इसका नाम नेपच्यून रखा गया। रोमन कथाओं में 'नेपच्यून' सागरों के देवता हैं।

हमारे देश में इसको वरुण कहा जाने लगा। यह ग्रह भी यूरेनस की ही तरह का है। इसका व्यास प्रायः 48600 कि.मी. है यह हमारे सूर्य से 4.5 अरब किलोमीटर दूर है। इसका घनत्व यूरेनस से अधिक है। यह भी हमारी पृथ्वी से भारी ग्रह है। यह 5.4 कि.मी. प्रति सेकेण्ड की गति से सूर्य की परिक्रमा 165 वर्षों में पूरी करता है। यह ग्रह अपने अक्ष पर 29 अंश झुका हुआ है। यह 15 घंटे 48 मिनट में अपने अक्ष पर एक परिभ्रमण करता है अर्थात् इसका अहोरात्र 15 घंटे 48 मिनट होता है। इसके वायुमण्डल में भी मीथेन एवं हाइड्रोजन गैंसे विद्यमान हैं इसके चन्द्रों की संख्या 8 है। 'ट्राइटन' इसका सबसे बड़ा ग्रह है। खगोलविदों का कहना है कि यह हमारे सौर-परिवार का सबसे भारी उपग्रह है और यह ग्रह (नेपच्यून) अन्यों की अपेक्षा उलटी दिशा में परिक्रमा करता है। सर्वाधिक दूरी से परिक्रमा करने वाला उपग्रह 'नीरीड' है परन्तु यह आकार में छोटा है।

वरुण (नेपचून) का भौतिक स्वरूप

1.	सूर्य से दूरी	4497070000 कि.मी.
2.	विषुवद् वृत्तीय व्यास	48600 कि.मी.
3.	ध्रुवीय व्यास	47500 कि.मी.
4.	अक्षीय परिभ्रमण काल	15 घंटे 48 मिनट
5.	कक्षीय परिभ्रमण काल	164.8 वर्ष
6.	द्रव्यमान	17.3 (पृथ्वी=01)
7.	पृष्ठीयतापमान	-210 सेंटीग्रेउ
8.	कक्षीय उत्केन्द्रता	0.007 अंशात्मक
9.	अक्षीय झुकाव	29.00 अंशात्मक
10.	कक्षीय झुकाव	01°46'
11.	कक्षीय गति	5.4 (कि.मी./सेकेण्ड)
12.	पलायन गति	23.9 (कि.मी./सेकेण्ड)
13.	पृष्ठीय तापमान	01.21 (पृथ्वी=1)
14.	घनत्व	0.29 (पृथ्वी=1)
15.	उपग्रहों की संख्या	8 (आठ)

वरुण के उपग्रहों का भौतिक स्वरूप

क्र. सं.	उपग्रह नाम	अन्वेषक नाम	अन्वेषण वर्ष	ग्रह से दूरी (कि.मी.)	व्यास (कि.मी.)	कक्षीय उत्केन्द्रता	कक्षीय झुकाव	आवर्त काल दिनों में
1.	ट्राइटन	लासेल	1846	355250	3800	0.0159^0	57'	5.877
2.	नीरीड	क्वीपर	1949	5545000	300	0.76 27^0	27'	360.2
3.	एन-1		1989	117500	420	–	–	1.1223
4.	एन-2		1989	73000	200	–	–	0.56
5.	एन-3		1989	62000	160	–	–	0.43
6.	एन-4		1989	52000	140	–	–	0.34
7.	एन-5		1989	50000	90	–	–	0.31
8.	एन-6		1989	48200	50	–	–	0.29

यम (प्लूटो)

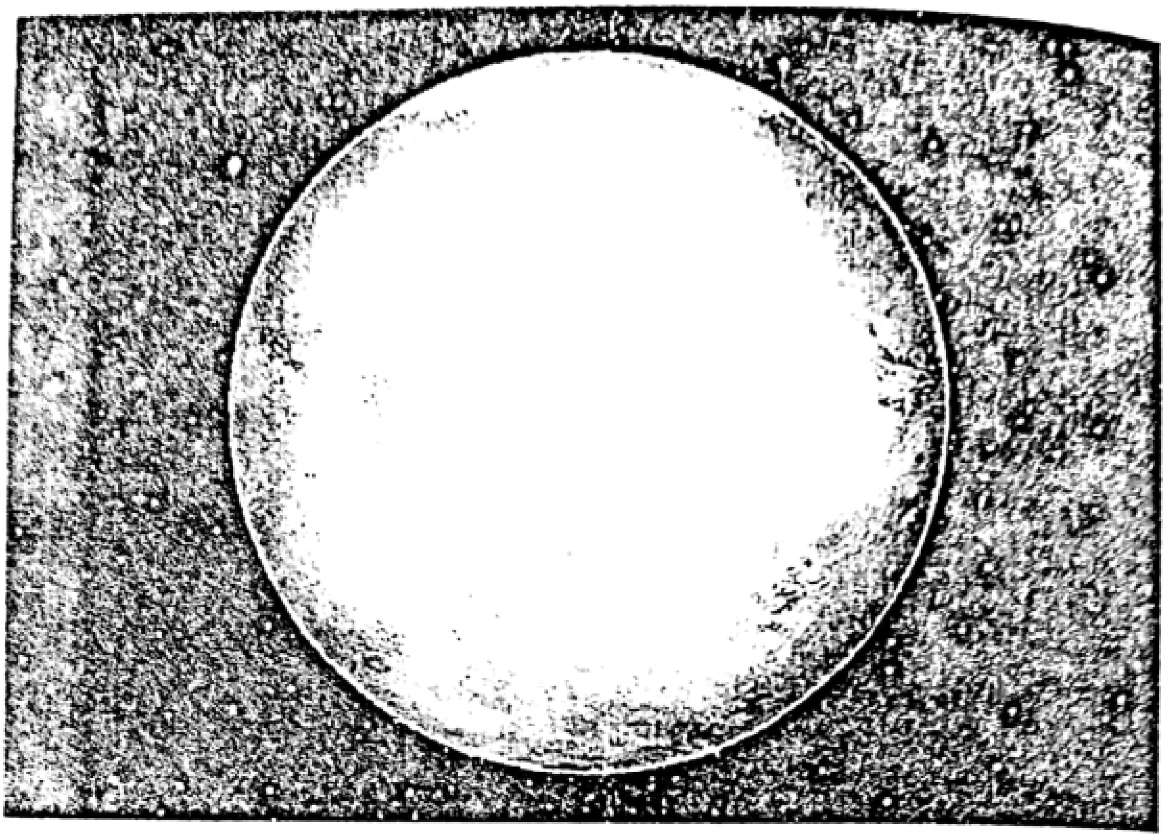
हमारे सौरमण्डल के इस नौवें ग्रह की खोज भी कुछ नेपच्यून की ही तरह सन् 1930 में हुई। यूरेनस की कक्षा में गति एवं स्थिति की गड़बड़ी ने ही पुनः वैज्ञानिकों को यह विचार करने को मजबूर किया कि नेपचून के परे भी कोई पिंड हो सकता है। प्रसिद्ध खगोलशास्त्री 'लोवेल' 1905 ईस्वीय वर्ष से ही इसकी खोज में जुट गए। लोवेल ने अफ्रीका के 'फ्लैगस्टाफ' नामक स्थान में इस कार्य के निमित्त एक वेधशाला स्थापित की परन्तु सन् 1916 में इनकी मृत्यु हो गई जिसके कारण ये इस ग्रह को खोज नहीं सके। इसके पश्चात् अन्य खगोलशास्त्रियों ने खोज जारी रखी। 1929 में टॉमबो जो अमेरिकावासी थे, इन्होंने भी इस ग्रह की खोज प्रारम्भ कर दी। इस समय तक आकाश के चित्र लेने की 'तकनीकी' का विकास हो चुका था। इसी आधार पर कई रातों तक आकाश के ग्रह-नक्षत्रों के चित्र लिए गए। अन्ततः इसी विधि से 'टॉमबो' ने सौरमण्डल का नौवाँ ग्रह खोज निकाला। जिसको 'प्लूटो' नाम दिया गया। यूनान में प्लूटो को मृत्यु का देवता कहा जाता है इसलिए भारतीयों ने इसे यम कह दिया। कुछ लोगों ने इसे कुबेर कहा। 4.7 कि.मी. प्रति सेकेण्ड के वेग से चलते हुए यह 248 वर्षों में

सूर्य की एक परिक्रमा पूरी करता है। यह सूर्य से लगभग 6 अरब किलोमीटर दूरी पर स्थिति है। खगोलज्ञों के अनुमान से यह नौवाँ ग्रह भारी होना चाहिए था परन्तु नूतन अध्ययनों से ज्ञात हुआ कि प्लूटो ग्रह पृथ्वी से हलका है। प्लूटो ग्रह की कक्षा अन्य ग्रहों की अपेक्षा अधिक अण्डाकार है। इसी कारण न्यूनतम दूरी के समय प्लूटो की कक्षा नेपच्यून की कक्षा के भीतर आ जाती है। प्लूटो का एक चन्द्र भी है जिसकी खोज 1978 ई. में हुई। प्लूटो के इस चन्द्र का नाम चेरॉन (कारॉन) रखा गया। इसका व्यास 1400 कि.मी. के आसन है। इसका आवर्तकाल 6.3748 दिनों का होता है।

यम (प्लूटो) का भौतिक स्वरूप

1.	सूर्य से दूरी	5913510000 किलोमीटर
2.	व्यास मान	5500 किलोमीटर
3.	अक्षीय परिभ्रमण काल	6 दिन 9.3 घंटे
4.	कक्षीय परिभ्रमण काल	248.5 वर्ष
5.	द्रव्यमान	6.57 (पृथ्वी=1)
6.	पृष्ठीय तापमान	-220^0 सेंटीग्रेट
7.	कक्षीय उत्केन्द्रता	0.248 अंश
8.	कक्षीय झुकाव	17^0 10’
9.	कक्षीय गति	4.7 (कि.मी./सेकेंड)
10.	पलायन गति	5.4 (कि.मी./सेकेण्ड)
11.	गुरुत्वाकर्षण	0.58 (पृथ्वी=1)
12.	घनत्व	0.96 (पृथ्वी=1)
13.	उपग्रहों की संख्या	1 (एक)

वरुण और यम ग्रह के अन्वेषण के ही अनुरूप यम की कक्षा से बाहर एक और ग्रह हो सकता है। कुछ भारतीयों एवं कुछ पाश्चात्य ज्योतिर्विदों की स्पष्ट अवधारणा है कि दसवां ग्रह अवश्य है, मात्र दूरी अधिक होने के कारण उसकी खोज करना कठिन है। अभी तक यह स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर नहीं हो पाया है। कुछ विद्वानों का कहना है कि सूर्य से इस ग्रह की दूरी औसतन 1150 करोड़ किलोमीटर है। विद्वानों का मानना है

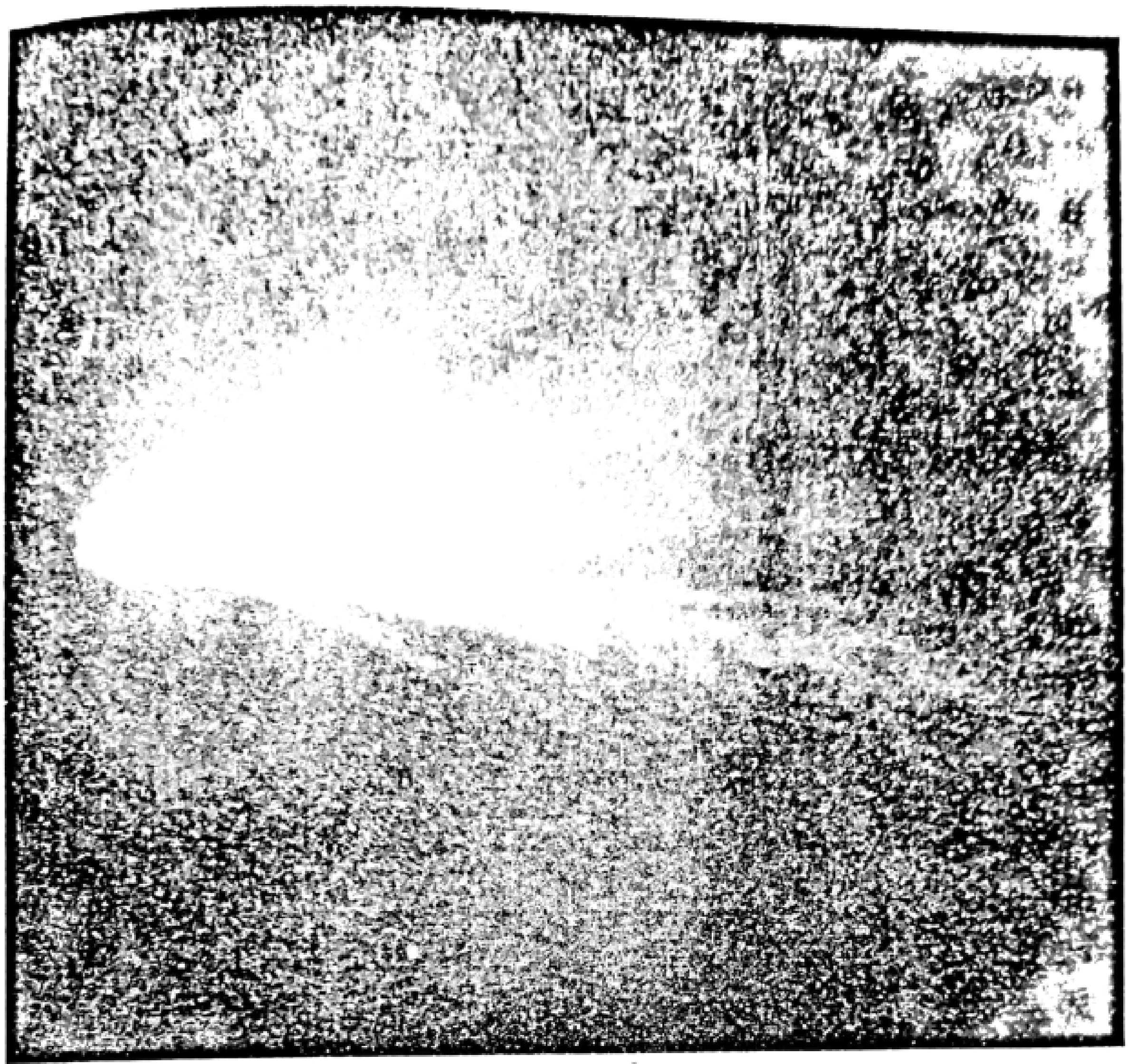


चित्र 23 यम (प्लूटो)

कि सौर-परिवार में आने वाले कुछ धूमकेतु यम की कक्षा से सुदूर बाहर जाकर पुनः सूर्य के समीप आते हैं। यम से सुदूर का अभिप्राय है कि ये धूमकेतु उस दशम ग्रह की कक्षा से बाहर जाकर लौटते हैं। प्लूटो का चन्द्रमा चेरॉन (कारॉन) प्रायः प्लूटो का आधा है। यह द्विग्रह का आभास भी कराता है। इस ग्रह की सर्वप्रथम स्पष्ट कल्पना भारतीय ज्योतिर्विद केतकर महोदय ने की थी। इस समय सभी इसकी सत्ता स्वीकार करते हैं। आज वैज्ञानिक इस दसवें ग्रह एवं अन्य ग्रहों, उपग्रहों के अन्वेषण में निरन्तर अध्ययन एवं अनुसंधान कार्य में संलग्न हैं।

धूमकेतु (कोमेट)

हमारे सौरमण्डल में ग्रह-उपग्रहों एवं क्षुद्र ग्रहों को छोड़कर कुछ अन्य प्रकाश पिण्ड भी दिखाई देते हैं। ये कभी-कभी ही हमको आकाश में दिखाई देते हैं। प्रायः इनका दिखाई देने का समय एक सप्ताह से एक मास पर्यन्त होता है। इसके पश्चात् ये दिखाई देने वाले प्रकाश पिण्ड अदृश्य हो जाते हैं। इनकी आकृतियाँ अन्य ग्रहों की तरह नहीं होती है। ये प्रकाशपुंज पहले



चित्र 24 धूमकेतुः

गोल वर्तुलाकार दिखाई देते हैं। इनकी एक पूँछ होती है। जैसे-जैसे ये भ्रमण करते हुए सूर्य के समीप पहुँचते हैं इनकी पूंछ बढ़ती जाती है। इसी पूंछ के कारण इनको 'पुच्छल तारा' कहते हैं। इन पुच्छल तारों को ही लोग धूमकेतु भी कहते हैं। जिसकी पूँछ का निर्माण धूम से हुआ हो, उसे ही धूमकेतु कहते हैं। वेद और वेदेतर साहित्य में बहुत जगहों पर धूमकेतुओं का वर्णन विस्तार पूर्वक मिलता है, यथा–

शन्नो मृत्युर्धूमकेतु शं रुद्रास्तिग्मतेजसः।[1]

असम्भृष्टो जायसे मात्रोः शुचिर्मन्दः कविरुदतिष्ठो विवस्वतः।

घृतन त्वावर्धयननग्न आहुत धूमस्ते केतुरभवद्दिवि श्रितः।[2]

1. अ. सं. 10।6।10
2. ऋ. सं. 5।11।3

अर्थात् दिव्य आपः ने तुझे बढ़ाया, हे अग्ने! जिसमें हवियाँ दी जाती हैं, धूम तेरा केतु हुआ और द्यु-लोक में ठहरा। *ब्रह्माण्ड पुराण*[1] में धूमकेतु को सब केतुओं में प्रमुख बताया है। आचार्य वराहमिहिर के प्रसिद्धि ग्रन्थ *बृहत्संहिता* में केतुओं का वर्णन विस्तृत रूप से मिलता है। इनके नाम बताए गए हैं—रविपुत्र, चन्द्रपुत्र, गुरुपुत्र, रविसम्भव, बुधसम्भव, शुक्रसम्भव आदि। ऋषियों के नाम पर भी धूमकेतुओं का नाम उपलब्ध होता है। यथा—उद्दालककेतु, काश्यपकेतु आदि। भारतीय दैवज्ञों ने केतुओं के वर्ण (रूप), आकार, आवर्तकाल आदि का वर्णन भी किया है। *बृहत्संहिता*[2] ग्रन्थ के टीकाकार भट्टोत्पल ने केतुओं के आवर्तकाल के सन्दर्भ में *पराशर संहिता* का मत प्रस्तुत किया है। उन्होंने कहा है कि—पैतामह चलकेतु 500 वर्षों के बाद उदित होता है। उद्दालकश्वेतकेतु 110 वर्षों के बाद दिखाई देता है। आकाश में शूलाग्र (तीव्र नोख) शिखा वाला यह शूलाग्रशिखाश्वेत (धवल) केतु 'ब्रह्मा' ताराराशि मण्डल एवं सप्त ऋषि तारामण्डल को स्पर्श करते हुए 1500 वर्षों के बाद उदित होता है अर्थात् इस केतु का भ्रमण काल 1500 वर्षों का होता है।

आचार्य देवल ने 108 केतुओं का वर्णन एवं उनकी गुणधर्मिता के आधार पर उनका विभाजन भी किया है जबकि पराशर ने 101 केतुओं का उल्लेख किया है। गुणधर्मिता के आधार पर केतुओं का विभाजन इस प्रकार है—

	केतुओं के नाम	**केतुओं की संख्या**
1.	आग्नेय	15
2.	रौद्र	21
3.	उद्दालक सुत	10
4.	काश्यप	14
5.	मृत्यु	4
6.	क्षितितनय	25
7.	सोम सम्भव	3

1. ब्रह्माण्ड पुराण 1।24।139
2. बृहत्संहिता 11।30-40।

8.	वरुण	3
9.	यमपुत्र	13

अद्भुत सार नामक ग्रन्थ में वर्णन मिलता है कि औद्दालक श्वेत केतु और प्रजापति सुतकेतु सात रात्रि पर्यन्त दिखाई देते हैं। इसी प्रकार धूमकेतुओं का वर्णन बहुत स्थलों पर मिलता है।

पाश्चात्य लोगों ने इसे कॉमेट कहा। यह शब्द यूनानी भाषा के 'कोमेल' शब्द से बना है। जिसका अर्थ होता है 'लम्बे बालों वाला'। जहाँ भारतवर्ष गुणधर्मिता के आधार पर केतुओं पर विचार करता था, वही भारतेतर देशों में लोग धूमकेतुओं से बहुत डरते थे। भारत के बाहर सर्वप्रथम यूरोप के महान खगोलविद 'तीखा ब्राहे' ने 1577 ई. में पहली बार यह सिद्ध किया कि ये धूमकेतु पृथ्वी एवं चन्द्रमा से बहुत दूर होते हैं।

कुछ छोटे पुच्छल तारे इतने छोटे होते हैं कि वे दूरदर्शक से ही देखे जा सकते हैं। कई एक तो बिना पूँछ के भी होते हैं। प्रारम्भ में प्रायः सभी बिना पूँछ के होते हैं, जब ये सूर्य के समीप आने लगते हैं तब इनकी पूँछ का निर्माण होता है। मुख्यतः इन पुच्छल तारों को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है–(1) नाभि (NUCLEUS), (2) शिखा या सिर (HEAD), (3) पुच्छ (TAIL)। नाभि वाला भाग छोटा और चमकीला होता है। यह भाग सिर के बीच में होता है। बहुत से पुच्छल तारों में पहले नाभि नहीं होती है। जब यह तारा सूर्य के समीप जाता है तभी नाभि का निर्माण होता है। पुच्छल तारों की पूँछ प्रायः चमकीली एवं झाड़ू के आकार की सूर्य के विपरीत दिशा में दिखाई पड़ती है। प्रायः पुच्छल तारे रात में ही दिखाई देते हैं। परन्तु कुछ पुच्छल तारे तो इतने चमकीले होते हैं कि दिन में सूर्य के समीप में भी दिखाई पड़ते हैं। सन् 1882 का पुच्छल तारा ऐसा ही एक था। यह पाँच महीने तक दिखाई दिया उसके पश्चात् दूरदर्शक से भी यह नहीं दिखा क्योंकि यह सूर्य से दूर जाने के कारण छोटा या मंद पड़ गया। अधिकांश पुच्छल तारे दूरदर्शक से ही देखे जा सकते हैं क्योंकि ये बहुत छोटे और मन्द होते हैं। अभी तक लगभग हजारों पुच्छल तारे देखे गए हैं। 1910 ई. में दो चमकीले पुच्छल तारे दिखे थे जिनमें से एक इतना चमकीला था कि दिन में भी दिखाई दिया था। दूसरा पुच्छल तारा हैली-धूमकेतु था। पुच्छल

तारों की संख्या कई लाख होगी। चार-पाँच पुच्छल तारे हर वर्ष दिखाई देते है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि बीस-पच्चीस छोटे-बड़े पुच्छल तारे सूर्य की परिक्रमा करते हुए अपनी कक्षा के उस बिन्दु को पार करते होंगे जो सूर्य के सर्वाधिक समीप होता है। कुछ पुच्छल तारों का वेग बृहस्पति या अन्य ग्रहों के आकर्षण से इतना प्रभावित होता होगा कि ये सूर्य के आकर्षण से मुक्त होकर उस ग्रह के आकर्षण में आ जाते होंगे। अतः वैज्ञानिकों का अनुमान है कि बृहस्पति वाले केतु-परिवार या अन्य ग्रहों वाले केतु-परिवार ऐसे ही बने होंगे। बृहस्पति बहुत भारी है इसलिए इसके परिवार में सर्वाधिक 30 केतु देखे जाते हैं जबकि शनि, यूरेनस और नेपच्यून के परिवार में क्रमशः 2, 3, 6, सदस्य पाए जाते हैं। इसी प्रकार के केतुओं को रविपुत्र, गुरुपुत्र आदि ग्रहपुत्र रूप में संहिता ग्रन्थों में कहा गया है।

धूमकेतुओं की कक्षा अधिकांशतः लम्बी दीर्घवृत्ताकार ही होती है। कुछ ही केतुओं की कक्षा परलवय और बहुत कम केतुओं की कक्षाएँ अतिपरवलयाकार होती है। प्रायः वैज्ञानिकों का कहना है कि इनकी कक्षाएँ वस्तुतः लम्बी दीर्घवृत्त ही होंगी। वेध की स्थूलता के कारण ये परवलय या अतिपरवलय जान पड़ती हैं। अगर धूमकेतुओं की कक्षा में परवलय अथवा अतिपरवलय होती तो ये धूमकेतु पुनः लौटकर नहीं आते। ये निश्चित समय में लौटते हैं, अतः इनकी कक्षाएँ लम्बी दीर्घवृत्ताकार हैं जो परवलयाकार जान पड़ती हैं। कभी-कभी सूर्य की परिक्रमा से लौटकर कुछ केतुओं की कक्षा परवलय या अतिपरवलय में परिणत हो जाती हैं, ये कभी पुनः नहीं लौटते। ऐसे धूमकेतुओं की भी अभी तक जानकारी नहीं है जो अन्य सौर-परिवारों अथवा हमारे सौर-परिवार के बाहर से आते हैं। प्रायः धूमकेतु हमारे सौर-परिवार के अन्तिम छोर से लौट जाते हैं। प्रायः भारतवर्ष के अलावा यह सोचा जाता था कि ये धूमकेतु दुबारा नहीं लौटते। सर्वप्रथम किसी धूमकेतु (पुच्छल तारे) की लौटने की भविष्यवाणी आइजेक न्यूटन के मित्र एडमण्ड हेली (1657-1742 ई.) ने सन् 1682 में की। यह घोषणा उन्होंने पुरानी जानकारी के आधार पर की थी, उन्होंने देखा था कि 1539 ई. और 1607 ई. में दिखाई देने वाला ही केतु यह 1682 में दिखाई दे रहा है। हेली ने सोचा कि एक धूमकेतु सौरमण्डल की सीमाओं का चक्कर

लगाकर 75 या 76 साल में सूर्य के पास लौटता है, अब यह 1758 में पुनः दिखाई देगा। वास्तव में यह 1758 में पुनः दिखाई दिया, इसके बाद इसे 'हेली धूमकेतु' कहा जाने लगा। इसे स्वयं हेली नहीं देख पाए। हेली धूमकेतु के अतिरिक्त कुछ और भी धूमकेतु हैं जो प्रसिद्ध हैं, यथा—एन. के. केतु, डोनाटी, केतु, टेम्पल केतु, मोरहाउस केतु आदि। अधिकतर धूमकेतु निश्चित समय में लौट आते हैं—यथा हेली 76 वर्षों में, एन. के. 3.33 वर्षों में, डोनाटी 2000 वर्षों में आदि। टेम्पल केतु ही ऐसा केतु है जिसकी पूंछ वाले भाग से 1861 ई. में पृथ्वी गुजरी थी। इस समय की जानकारी के अनुसार यह केतु विखंडित होकर उल्का पिंडों में परिणत होकर समाप्त हो गया है। अब कह सकते हैं कि सौरमण्डल के ग्रहों के सदृश ये धूमकेतु भी सूर्य की परिक्रमा करते हैं। इन सब केतुओं का परिभ्रमण काल भिन्न-भिन्न है जैसा कि बताया जा चुका है। इनके परिभ्रमण काल की अवधि के सन्दर्भ में खगोलविदों का कहना है कि यह समय 3 वर्ष से लेकर 10 लाख वर्ष तक का हो सकता है। अनेक धूमकेतुओं का मार्ग ग्रहों से भिन्न होता है। कुछ धूमकेतु वामावर्त होकर तथा कुछ दक्षिणावर्त होकर भ्रमण करते हैं। ग्रह कक्षा के सापेक्ष इनका कोणीय मान 0^0 से 250^0 तक होता है।

सन् 1985 तक धूमकेतुओं का अध्ययन वेधशालाओं से होता रहा। सोवियत संघ एवं यूरोपीय अन्तरिक्ष एजेंसी ने यह योजना बनाई कि जब हेली धूमकेतु पृथ्वी के समीप पहुँचे तो उसके अध्ययन के लिए स्वचालित यान भेजे जाएँ और इसी उद्देश्य से 1985-86 में सोवियत संघ ने वीहे और यूरोपीय अन्तरिक्ष एजेंसी ने [illegible]त्तो नामक स्वचालित यान पृथ्वी से भेजे। ये मार्च 1906 को हेली धूमकेतु के पास पहुँचे। इन यानों ने जानकारी दी कि धूमकेतु की नाभि 16×9 किलोमीटर है। यह प्रति सेकेण्ड 10 टन अन्तरिक्ष धूलि तथा 30 टन गैसें छोड़ता हैं जिससे इसकी लम्बी पूँछ का निर्माण होता है। यह हेली धूमकेतु अब 2062 ई. सन् में दिखाई देगा। उस समय इसके अध्ययन में वैज्ञानिकों को अधिक सफलता मिलेगी।

उल्का

रात्रि के समय आकाश में प्रायः गिरते हुए तारों को सभी लोग देखते हैं।



चित्र 25

इसे ही तारा टूटना भी कहते हैं। *अथर्ववेद* में भी उल्काओं की चर्चा आती है, यथा—**शन्नोभूमिर्वेष्यमाना शमुल्का निर्हतं च यत्।** अन्तर्ग्रहीय अन्तरिक्ष में धात्विक ठोस कण और लघु कायपिण्ड भ्रमण करते हैं। इनमें से जब कोई कण या लघुकाय पिंड पृथ्वी के वायुमण्डल में प्रवेश करता है तो वायुमण्डल में घर्षण के कारण जल उठता है और वह तेजी से पृथ्वी में गिरता हुआ दिखाई देता है, इसे ही टूटता हुआ तारा या उल्का कहते हैं। अन्तरिक्ष में ग्रहवत् घूमते हुए लघुकाय पिंडों को उल्काभ कहते हैं। ये भी सूर्य की ही परिक्रमा करते हैं। कभी-कभी ये ही पिंड पृथ्वी के गुरुत्वबल के कारण पृथ्वी के वायुमण्डल में प्रवेश करके उल्का का रूप धारण कर लेते हैं। कुछ वैज्ञानिकों का कहना है कि धूमकेतु के विखंडित खंड ही उल्काओं के रूप में पृथ्वी पर गिरते हैं। जैसे बिएला एवं टेम्पल धूमकेतु विखंडित होकर उल्का राशि अथवा उल्का पिंडों में परिणत हो गए। मुख्यतः उल्का पिंडों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है।

1. प्रथम श्रेणी में वे उल्काएँ आती हैं जो भूमि में गिरने के पूर्व ही

वायुमण्डल में घर्षण से दग्ध (जलकर) होकर वाष्प रूप रजकण में परिणत होकर आकाश में ही विलुप्त हो जाती हैं।

2. द्वितीय श्रेणी में वे उल्काएँ आती हैं जो प्रथम श्रेणी की अपेक्षा कुछ स्थूल होती हैं और अत्यधिक प्रकाशित होती हैं। इन्हें अग्नि-गोलक (अग्नि के गोले) भी कहते हैं। जब ये पृथ्वी के वायुमण्डल में प्रवेश करती हैं तब भूमि के वायुमण्डल में एक प्रचंड नाद (प्रचंड ध्वनि) होता है। तदनन्तर ये उल्काएँ वायुमण्डल में ही भस्मीभूत हो जाती हैं। ये भी प्रायः पृथ्वी तक नहीं पहुँच पाती हैं।

3. तृतीय श्रेणी में आने वाली उल्काएँ वायुमण्डल में जलने के बाद भी बच जाती हैं और पृथ्वी के धरातल में पहुँच जाती हैं। यही उल्काएँ उल्काभ या उल्कापिंड कहलाती हैं। इन प्रज्वलित तीव्र वेग से आने वाले उल्का पिंडों से पृथ्वी में गर्त्त (गड्ढे) हो जाते हैं। कभी-कभी ये उल्का पिंड विशालकाय भी होते हैं। इसी प्रकार का एक उल्का पिंड अमेरिका के एरिजोना रेगिस्तान में गिरा, जिससे 570 फिट गहरा तथा 4200 फिट विस्तार (व्यास) वाला गड्डा (गर्त) बना जो आज भी विद्यमान है। कहते हैं 25000 वर्ष पूर्व उल्कापात से ही यह गड्डा बना। जून 1908 ई. में रूस के साइबेरिया प्रान्त में एक उल्कापात हुआ। यह उल्कापात इतना भयानक था कि इससे पूरा साइबेरिया प्रान्त हिल उठा। इरकुट्स्क के भूकम्पमापीयंत्रों ने पृथ्वी की कम्पन को अंकित किया। इसकी आवाज इतनी तेज और भयानक थी कि लोगों ने सोचा कि यह कहीं आसपास ही गिरा होगा परन्तु वस्तुतः वह कई सौ मील दूर उस शहर के उत्तर में गिरा था। सामान्य खोज में यह नहीं मिला। यूरोपियन महासमर में लोग प्रायः इसे भूल गए थे परन्तु 1921 में रूसी वैज्ञानिकों ने सरकार से इसके खोज करने की माँग की। सरकार ने कुलिक के नेतृत्व में एक वैज्ञानिक दल खोज के लिए भेजा परन्तु ये असफल रहे। पुनः 1927 में कुलिक के ही नेतृत्व में दूसरी खोज पार्टी निकाली गई। यह दल काफी मेहनत के पश्चात् अपने अभियान में सफल हुआ। कुलिक ने कहा कि जैसी भयानक घटना यहाँ घटी, वैसी घटना इससे पूर्व कभी भी सुनने में नहीं आई। इस घटना से पूर्व यहाँ घना जंगल था परन्तु अब यह क्षेत्र तृणरहित हो गया है। इस स्थान से 50 मील दूरी तक के मकान गिर

गए। सारे जीव (मनुष्यादि) मर गए। वहाँ के एक निवासी ने बताया कि उसके एक रिश्तेदार के पास इसी जंगल में 1500 मवेशी थे परन्तु उल्का प्रस्तर गिरने के पश्चात् उनका कहीं पता नहीं लगा। दो जानवरों की लाशें मिलीं, मकान भी जल गया था, धातु के सभी औजार पिघल गए थे। इस उल्कापात से भूमि में सैकड़ों छोटे, बड़े गड्ढे हो गए। प्रायः 3 से 4 मील तक का वर्गाकार क्षेत्र पूर्ण रूप से विनष्ट हो गया था। सबसे बड़ा गड्ढा 150 फुट व्यास का था। आश्चर्य की बात यह थी कि यहाँ कोई भी उल्का प्रस्तर नहीं मिला। कुलिक का अनुमान था कि उल्का प्रस्तर एक नहीं था, अपितु यह कई टुकड़ों में विभक्त था। ये भूमि के अन्दर बहुत दूर तक घुस गए हैं।

सन् 1803 से पूर्व वैज्ञानिकों का यह दृढ़ विश्वास था कि आकाश से पत्थर गिर नहीं सकते। जब कोई यह कहता कि पत्थर आकाश से गिरे तो वैज्ञानिक उसे झुठला देते थे, परन्तु जब 1803 ई. में फ्रांस के एक गाँव पर पत्थरों की बौछार हुई और वहाँ के निवासी व्याकुल हो उठे। तब वैज्ञानिक ऐकेडमी का दृढ़ विश्वास हिल गया और अन्त में उन्होंने वैज्ञानिक 'बायो' को जाँच के लिए भेजा। 'बायो' ने पाया कि वास्तव में पत्थर गिरते हैं और आकाश से ही आते हैं। तब से इन उल्का पत्थरों पर वैज्ञानिक विवेचन होने लगे। उल्का पत्थरों के 6 से 100000 टुकड़े तक कभी-कभी एक ही स्थान पर गिरते हैं। सन् 1830 में फ्रांस के एक स्थान पर, तीन हजार टुकड़े गिरे थे। यहाँ के निवासी व्याकुल हो उठे थे। एक बार पौलेंड के पुल्टुस्क नगर में 100000 उल्का प्रस्तर गिरे थे। 19 जुलाई 1912 को अरिज़ोना में 14000 गिरे थे। सुनते हैं कि हंगरी में भी एक बार उल्का पिंडों की वर्षा हुई थी। प्रायः प्रतिवर्ष कहीं-न-कहीं उल्का पत्थर गिरते रहते हैं।

फैरिंगटन महोदय के अनुसार उल्का पाषाण खंड में निम्नांकित रासायनिक तत्त्वों का मिश्रण (योग) मिलता है। जैसे—

तत्व	**मात्रा (प्रतिशत में)**
1. लोहा	72.06
2. ऑक्सीजन	10.10
3. निकिल	06.50

4.	सिलिकन	05.20
5.	मैगनीशियम	03.80
6.	अन्य	00.50

आज भी पृथ्वी में बहुत स्थलों पर ये उल्का प्रस्तर विद्यमान हैं। लगभग 2 हजार उल्का पिण्ड जमा करके विश्व की विभिन्न संग्रहालयों में रख दिए गए हैं। प्रायः हर साल हजारों उल्का पिण्ड पृथ्वी पर गिरते हैं। अधिकांशों की खोज करना सम्भव नहीं है। अभी तक जितने भी उल्का पिण्डों की खोज पृथ्वी पर हुई, उनमें से सबसे बड़ा उल्का पिण्ड अफ्रीका के होवा नामक स्थान से प्राप्त हुआ है जिसका भार 60 टन है। ग्रीनलैंड से प्राप्त उल्का पिण्ड का भार 36.5 टन है। अभी तक उल्का पिण्डों (पत्थरों) के बारे में वैज्ञानिक संदिग्ध हैं। कई वैज्ञानिकों का कहना है कि इन पिण्डों का सम्बन्ध क्षुद्रग्रह पिण्डों से है। इस समय इन उल्का पिण्डों पर गहराई से अध्ययन चल रहा है जिससे सौर-परिवार की उत्पत्ति का रहस्य भी खुल सकता है।

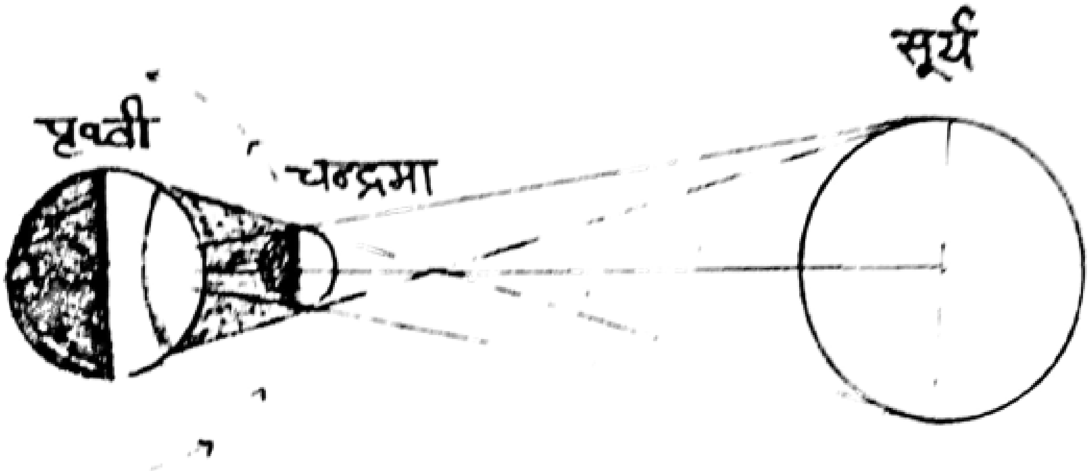
उल्का पिण्डों एवं उल्काओं के इतिहास के सन्दर्भ में यदि हम विचार करें तो हमको उल्काओं का सर्वप्रथम वर्णन *अथर्ववेद* में मिलता है जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है। बाइबिल में एक स्थान पर लिखा है कि "ईश्वर ने आकाश से बड़े-बड़े पत्थर गिराए"—हो सकता है यह बात उल्का पत्थरों के सन्दर्भ में लिखी हो। प्राचीन रोमन ग्रन्थकार लिवी (Livy) ने सन् 650 ई. पूर्व में उल्कापात की चर्चा की है। लिवी ने लिखा है कि "राजा और दरबारियों के पास एक समाचार लाया गया कि ऐलबन शृंग पर पत्थर बरसा है। इस बात की सम्भावना पर यद्यपि विश्वास नहीं होता था तथापि कुछ लोगों को जाँच के लिए भेजा गया। उनके सामने भी आकाश से बहुत से पत्थर गिरे। साथ में बहुत बड़ा नाद भी सुनाई पड़ा। लोगो ने अर्थ लगाया की देवता अप्रसन्न हैं, इसलिए नौ दिनों तक व्रत रखने की आज्ञा सबको दी गई।" 687 ई. पूर्व चीनी पुस्तकों में भी उल्काओं का वर्णन मिलता है, यथा "अर्धरात्रि में तारे पानी की तरह बरसने लगे।" पुनः सन् 644 ई. पूर्व में 5 पत्थरों के गिरने की चर्चा मिलती है। इन उल्का पत्थरों से हथियार एवं मूर्तियाँ बनती थीं इसके भी प्रमाण मिलते हैं। 'देवताओं की

माता' की जो प्रतिमा 204 ई. पूर्व में रोम में लगाई गई वह उल्का प्रस्तर की ही थी। इस प्रकार की बहुत सी चर्चाएँ उपलब्ध होती हैं।

पहले उल्काओं की भविष्यवाणी नहीं की जा सकती थी परन्तु आज अब ऐसी स्थिति नहीं है। आज हम पृथ्वी पर उल्कापात होने के पूर्व ही जानते हैं कि उल्कापात कब होगा, कैसे होगा, आदि। इसी प्रकार सन् 2000 ई. के नवम्बर 17, दिसम्बर 13, को होने वाले उल्कापात की सूचना पहले ही दी गई थी। 17 नवम्बर को लियोनिड यानी लियो (सिंह) राशि की ओर से और 13 दिसम्बर को जेमिनिड अर्थात् जेमिनी (मिथुन) राशि की ओर से हजारों उल्कापिण्डों ने पृथ्वी के वायुमण्डल में प्रवेश किया। इन उल्काओं के घर्षण से आकाश में फूलझड़ी सा दृश्य उत्पन्न हुआ। वास्तविक रूप में लियोनिड उल्काएँ 'टेंपल' धूमकेतु के मलबे के ही हिस्से हैं। 'टेंपल' की ही भाँति 13 दिसम्बर 2000 का उल्कापात 'फीटन' धूमकेतु की पूँछ की वजह से था। पूँछ के बिखरे उल्काभ ही उस दिन पृथ्वी के वायुमण्डल में प्रवेश कर चमकदार शोले के रूप में दिखाई दिए। पृथ्वी पर आते-आते ये समाप्त हो चुके थे। इस प्रकार की उल्काओं से पृथ्वी का तो कोई नुकसान नहीं होता, परन्तु विशाल उल्का पिण्डों के गिरने से पृथ्वी में सर्वाधिक क्षति होती है। वैज्ञानिकों का कहना है कि इसी प्रकार से विशाल उल्का पिण्डों के गिरने से ही पृथ्वी के विशालकाय जीव 'डायनासौरों' का विनाश हुआ। अभी हाल में भी '2000-एसजी-344' नामक एक उल्का पिण्ड चर्चा का विषय बना हुआ है क्योंकि यह भी कुछ विशाल ही है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि आने वाले 30 वर्षों के दौरान कभी भी इसके पृथ्वी पर टकराने की सम्भावना है। लास एंजिल्स स्थित 'अर्थ ऑब्जेक्ट प्रोग्राम' के वैज्ञानिकों के अनुसार 29X69 मीटर के आकार का यह पिण्ड 29 दिसम्बर 2030 को पृथ्वी के सबसे नजदीक होगा तथापि यह दूरी लाखों कि.मी. में होगी। पृथ्वी से इसकी टक्कर को सिर्फ इसलिए इनकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि इसके परिक्रमा पथ में स्वाभाविक फेर-बदल भी सम्भव है। आशंका है कि यदि यह पिण्ड पृथ्वी से वास्तव में टकरा गया तो इसका प्रहार 23000 टन वजनी चट्टान जैसा होगा जिससे किसी विनाशकारी परमाणु विस्फोट की भाँति हानि हो सकती है।

राहु-केतु : ग्रहण के हेतु

हमारी पृथ्वी भी इस सौर-परिवार की एक मुख्य सदस्य है। सारे ग्रह सूर्यकेन्द्राभिप्रायिक स्वकक्षाओं में गतिमान हैं। चन्द्र भूकेन्द्राभिप्रायिक और हमारा सूर्य समग्र सौर-परिवार के सहित आकाशगंगा में गतिमान है। वैदिक एवं नूतन अनुसंधान के अनुसार समस्त जगत ही गतिशील है, अतः कह



चित्र 26 सूर्यग्रहण

सकते हैं कि चराचर जगत् के गतित्व में ही सृजन का अस्तित्व है। इस गतिमान प्रक्रिया के कारण ही जब सूर्य चन्द्रमा के बीच में एक सूत्र में पृथ्वी आती है तो चन्द्रग्रहण होता है और सूर्य पृथ्वी के बीच में एक सूत्र में जब चन्द्रमा आता है तो सूर्यग्रहण होता है। सूर्य चन्द्र के बीच में पृथ्वी के आने से पृथ्वी की तमोमयी सूच्याकार छाया सदा सूर्य के विपरीत दिशा में 180^0 पर गिरती है। इसलिए कहते हैं कि भूभा सदा क्रान्तिवृत्त में ही भ्रमण करती है। जब चन्द्रबिम्ब भूभा से आच्छादित होता है तो चन्द्रग्रहण कहलाता है अर्थात् कह सकते हैं कि चन्द्रग्रहण का हेतु भूभा ही है। यह स्थिति पूर्णिमा को होती है इसलिए चन्द्रग्रहण भी पूर्णिमा को ही होता है, परन्तु प्रति पूर्णिमा को ग्रहण नहीं होता है। इसका ज्योतिर्विद क्रान्तिवृत्त से चन्द्रविमण्डल की प्रवणता ही कारण मानते हैं, यही चन्द्र का विक्षेप (शर) भी कहलाता है। चन्द्रविमण्डल का क्रान्तिमण्डल से कोणीय अन्तर 5.15 (5^09^1) अंशात्मक है। इसी कोणीय अन्तर से स्वकक्षा में भ्रमण करता हुआ

चन्द्रमा क्रान्तिवृत्त से अर्धमास उत्तर में और अर्धमास दक्षिण में रहते हुए क्रान्तिवृत्त का उल्लंघन मास में दो बार करता है, अर्थात् कह सकते हैं कि चन्द्र विमण्डल और क्रान्तिमण्डल का सम्पात् दो स्थानों पर होता है। ये दो सम्पात्, बिन्दु ही राहु और केतु नाम से जाने जाते हैं। चन्द्रकक्षा क्रान्तिवृत्त को उत्तर जाते हुए जहाँ काटती है वह राहु और दक्षिण जाते हुए जहाँ काटती है वह केतु संज्ञक है। ऐसा भी कह सकते हैं कि भूकक्षीय पथ को चन्द्रमा उत्तर जाते हुए (चढ़ते हुए) काटता है तो राहु (Ascending node of the moon's orbit) और दक्षिण जाते हुए (उतरते हुए) काटता है तो केतु (Desending node of the moon's orbit) कहलाता है। चन्द्रग्रहण के अवसर पर चन्द्रमा भूभा में प्रवेश करता है और जैसा कि स्पष्ट है भूभा सदा क्रान्तिवृत्त में भ्रमण करती है इसलिए क्रान्तिवृत्त में चन्द्रमा की उपस्थिति भी आवश्यक है। क्रान्तिवृत्त में चन्द्र की उपस्थिति मात्र सम्पातों में ही सम्भव है। अतः एव यह सिद्ध है कि चन्द्रग्रहण तभी सम्भव है जब चन्द्रमा सम्पातों में हो या सम्पातों (राहु-केतु) के आसन्न हो। अतः इससे सिद्ध होता है कि चन्द्रग्रहण के मुख्य हेतु पूर्णिमा और सम्पातों में अथवा सम्पातासन्न चन्द्र है। इसी प्रकार सूर्यग्रहण में भी चन्द्र की तमोमयी छाया सदा सूर्य के विपरीत 180 अंश पर गिरती है और यदि इस छाया में पृथ्वी आ जाए तो छायाछन्न भूपृष्ठवासियों को सूर्य नहीं दिखाई देगा; वैसे ही जैसे कि किसी मेघ खंड के द्वारा सूर्य ढका हुआ प्रतीत होता है। ऐसे ही चन्द्र के द्वारा सूर्य का अदर्शन हो जाता है। इसी अवस्था का नाम सूर्यग्रहण है। जैसा कि *सूर्य सिद्धान्त* में कहा है–

छादको भास्करस्येन्दुरधस्ताद् घनवत् भवेत्।
भूच्छायां प्राङ्मुखश्चन्द्रो विशत्यस्य भवेदसौ।''[1]

घनवत् चन्द्राच्छन्न सूर्यग्रहण की स्थिति को पृथ्वीग्रहण के रूप में कहना चाहिए क्योंकि प्रकाशमान वस्तु पर छाया नहीं हो सकती, छाया तो पृथ्वी पर पड़ती है। इस अवसर पर चन्द्र, सूर्य और पृथ्वी के बीच में होता है। यही स्थिति अमावस्या कहलाती है। अतएव अमावस्या में ही सूर्यग्रहण होता

1. सूर्यसिद्धान्त चन्दग्रहणाधिकार श्लोक 9

है, परन्तु प्रति अमावस्या को सूर्यग्रहण नहीं होता है इसलिए यहाँ भी चन्द्रग्रहणवत् चन्द्र को पातों में या पातासन्न होना चाहिए। अतः यह सिद्ध होता है कि सोमार्क ग्रहण में राहु-केतु ही मुख्य हेतु हैं परन्तु यहाँ राहु-केतु का अभिप्राय राहु नामक तमोमयाकृतिवान् पिण्ड अथवा पुरातन गाथाओं में वर्णित राहु नामक राक्षस से नहीं लेना चाहिए, जैसा कि कहा है–

अन्धकारमयो राहुर्मेघखण्ड इवोत्थितेः।
आच्छादयति सौमार्कौ पर्वकाले ह्युपस्थिते।।[1]

ब्रह्मगुप्त[2] और भास्कराचार्य गणितीय राहु की आगम (पुरातनगाथा वर्णित) राहु के साथ कुछ इस प्रकार की संगति करते हैं कि दोनों राहुओं का सामंजस्य बना रहे।

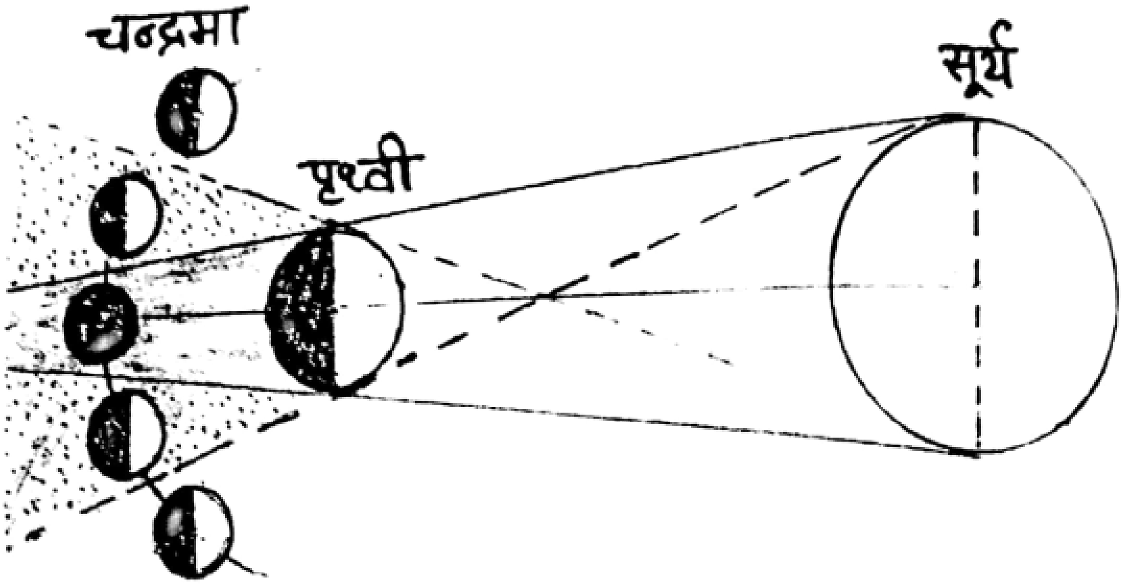
यथा–

दिग्देशकालावरणादि भेदान्नच्छादको राहुरिति ब्रुवन्ति।
यन्मानिनः केवलगोलविद्यास्तत् संहिता वेदपुराणबाह्यम्।।
राहुः कुभामण्डलगः शशांकशशांकगश्छादयतीनबिम्बम्।
तमोमयः शम्भुवर प्रदानात् सर्वागमानामविरुद्धमेतत्।।[3]

यहाँ पर *वासना* भाष्य में स्वयं आचार्य का स्पष्ट मत है कि सूर्य और चन्द्रग्रहणों में छादक राहु नहीं है जैसा कि राहुकृत् ग्रहणों का पुराणों में उल्लेख मिलता है। वस्तुतः सूर्यग्रहण में चन्द्र छादक है और चन्द्रग्रहण में भूभा छादिका है न कि राहु। पुनः आचार्य कहते हैं कि सूर्यग्रहण अमान्त में और चन्द्रग्रहण पूर्णान्त में होते हैं। दोनों ग्रहणों का काल भिन्न है तथा सूर्यग्रहण पश्चिम से स्पर्श और पूर्व से मोक्ष होता है जबकि चन्द्रग्रहण पूर्व से स्पर्श और पश्चिम से मोक्ष होता है। यह दिग्भिन्नता है और राहु एक ही है, अतः राहुकृत् ग्रहण कैसे सम्भव है? भूमण्डल में सूर्यग्रहण एक ही समय में कहीं से खग्रास, कहीं से खण्डग्रास और कहीं से ग्रहणाभाव दिखाई देता है जबकि चन्द्रग्रहण एक ही समय में भूमण्डलस्थ विभिन्न अक्षांश

---

1. बृ. स. पृ. 112
2. ब्रह्मसिद्धान्त गोलाध्याय 35-58
3. सि. शि. गो. ग्रहणवासना श्लोक 9-10



चित्र 27 चन्द्रग्रहण

देशान्तरों में स्थित द्रष्टाओं को एक-सा ही दिखता है। ग्रहणों में यह दिग् देश काल की वैभिन्न्यता एक ही राहु के कारण कैसे, अतः स्पष्ट है कि राहु छादक नहीं होगा। गणित एवं खगोल मर्मज्ञों के अनुसार राहु एक सम्पात् है जबकि पुराण के लाक्षणिक एवं आलङ्कारिक अर्थ के अनुसार वह एक तमोमय आकृतिवान् असुर संज्ञक है। यहाँ पर भास्कराचार्य आगम और गणित का सामंजस्य स्थापित करते हुए कहते हैं कि राहु भूभा में घुसकर चन्द्रमा को और चन्द्रमा में घुसकर सूर्य को आच्छादित करता है। यहाँ आचार्य का मत गणितीय दृष्टि से है इसलिए भी समीचीन प्रतीत होता है क्योंकि इस स्थिति में सम्पात् छाया में ही अन्तर्हित होता है। पुराणों की कथा को भी यदि ध्यान में रखकर गणितीय विवेचना करें तो ठीक ही प्रतीति होती है क्योंकि अमृतपान के समय राहु को बताते वाले देवता सूर्य और चन्द्र है जबकि गणितीय दृष्टि से सूर्य के आभासिक भ्रमण पथ क्रांतिमण्डल एवं चन्द्र विमण्डल के सम्पात का नाम राहु एवं केतु है। ये दोनों मण्डल जब सुदर्शन चक्र की तरह वर्त्तुल होकर एक दूसरे को काटते हैं तो दो सम्पात उत्पन्न होते हैं क्योंकि जब भी एक मण्डल दूसरे मण्डल को काटेगा तो एक बिन्दु पर नहीं, दो बिन्दुओं पर काटेगा अर्थात् 6 राशि अर्थात् 180° के अन्तर पर काटेगा। इस आधार पर राहु-केतु के नियामक सूर्य-चन्द्र ही हुए। सुदर्शन चक्र के कटने पर राहु एवं केतु बने अर्थात् क्रांतिमण्डल एवं

चन्द्रमण्डल के आभासिक कटान (सम्पात्) को ही पात अथवा राहु-केतु कहा गया जो गणितीय दृष्टि से ग्रहण के लिए परम आवश्यक है।

उपसंहार

जिस शास्त्र में ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति, गति, परिभ्रमण काल आदि का विवेचन एवं काल के मूर्त्त-अमूर्त्त भेदों का निरूपण किया जाता है, उसे ही हम ज्योतिष-शास्त्र कहते हैं। ज्योतिष एक पूर्ण विज्ञान ही नहीं, अपितु समस्त विज्ञानों का जनक भी है। सर्वप्रथम सृष्टि के आरम्भ में सूर्य, चन्द्र एव तारों ने ही मनुष्य के हृदय में जिज्ञासा की प्रबल तरंगों को उद्भूत किया। यही एक बात है जिसके कारण ज्योतिष का जन्म सभी विज्ञानों में सर्वप्रथम हुआ। यही आश्चर्यजनक जिज्ञासाएँ ही इसके उन्नति के मूल में निहित हैं। सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रों के नियमित आभासिक उदयास्त से, चन्द्र के ह्रास-वृद्धि से, ऋतुओं के नियमानुसार लौटने से ही मनुष्य ने सर्वप्रथम यह सीखा होगा कि इस परिवर्तनशील संसार में कोई नियम भी है और नियमों का ज्ञान ही विज्ञान की उत्पत्ति का मूल है। जैसे तुच्छ धातुओं से सुवर्ण बनाने की खोज में रसायनशास्त्र की, रोगों से मुक्ति पाने की चेष्टा में चिकित्साशास्त्र की तथा ज्योतिष के सभी प्रश्नों को हल करने में गणितशास्त्र के सभी अंगों की उत्पत्ति हुई। आज भी ज्योतिष के कारण ही गणित की विशेष उन्नति हो रही है।

ज्योतिष एक पूर्ण एवं विश्व का प्राचीनतम विज्ञान है। बौद्धिक अनुभूतियों का निरन्तर संघात जब बुद्धि-क्षेत्र में एक नियम बनाता है और वह बुद्धि द्वारा परिष्कृत होकर सिद्धान्त रूप बन जाता है तो उसे भौतिक एवं पार्थिव विज्ञान कहते हैं। किसी भी शास्त्र का विशेष ज्ञान ही विज्ञान कहलाता है। आध्यात्मिक अनुभूतियाँ हमारे ज्ञान कोश में एक नियमित पद्धति बनाकर ज्ञान द्वारा उपपत्तिमान होती हैं जिसे हम आध्यात्मिक विज्ञान कहते हैं। मुख्यरूप से विज्ञान को भौतिक और आध्यात्मिक दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। उक्त दोनों विज्ञानों की दो शाखाएँ होती हैं। प्रथम शाखा में नियम और दूसरी शाखा में उसकी निष्पत्ति तथा यौगिक प्रतिक्रियाएँ होती हैं। जिस विज्ञान में ये दो शाखाएँ प्रतिपादित हों उसे पूर्ण

विज्ञान कहा जा सकता है। ब्रह्माण्ड में उत्पन्न होने वाली घटनाओं ने ही गणित का विकास किया और हम ब्रह्माण्ड के हर रहस्य को जानने का प्रयत्न भी गणित के माध्यम से ही सर्वाधिक कर पाते हैं। किसी भी पदार्थ के रहस्य को जानने की हमारे पास आदिकाल में दो प्रविधियाँ उपलब्ध थीं जिसे हम भौतिक एवं आध्यात्मिक प्रविधि के नाम से जानते थे। जहाँ भौतिक प्रविधि का क्षेत्र समाप्त होता है वहीं से आध्यात्मिक प्रविधि आरम्भ होती है। इसी प्रविधि से महर्षियों ने समग्र ज्ञान को प्राप्त किया था क्योंकि इस प्रविधि का मूल मंत्र ही **'यत् पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे'** है।

इस अनन्त ब्रह्माण्ड में अभी मानव का ज्ञान एवं प्रयास सर्वाल्प है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि यह विश्व कितना विशाल है और इसमें हम अभी पूर्ण रूप से अपने ही सौर-परिवार को नहीं समझ पाए हैं तो इस ब्रह्माण्ड को क्या समझ पाएँगे? परन्तु फिर भी मानव बुद्धि ने हार नहीं मानी और निरन्तर प्रयास जारी रखे है। यदि हम यह कहें कि हमने ब्रह्माण्ड का बहुत ज्ञान प्राप्त कर लिया है तो हम इस कल्पना के आधार पर समझ सकते हैं कि जैसे इस पूरी पृथ्वी पर हमारा परिवार है उसी प्रकार हमारे ब्रह्माण्ड में हमारा सौर-परिवार है। अभी तक मनुष्य अपने सौर-परिवार के पूरे सदस्यों से भी वार्ता नहीं कर सका है। मात्र पृथ्वी अभी अपने चन्द्र को कुछ जानती है और एक बार उसने चन्द्र से सम्पर्क (चन्द्र पर उतर गया) किया है। अब हम कल्पना कर सकते हैं कि जब हम अभी अपने सौर-परिवार को ही इतना कम जानते हैं तो ब्रह्माण्ड को कितना जानते होंगे! यह ब्रह्माण्ड बहुत विशाल है। कह सकते हैं कि **'महतो महीयान्'** है परन्तु फिर भी वैज्ञानिकों का अहर्निश प्रयास जारी है कि इस ब्रह्माण्ड के रहस्य को समझा जाए। मनुष्य नित्य प्रति इस अनुसंधान में लगा है कि उसे शायद अपने पृथ्वी जैसे प्राणी मिल जाएँ। मिलेंगे अवश्य, परन्तु वे इस ब्रह्माण्ड में कहाँ हैं? कैसे हैं? कितनी दूर हैं? क्या हमारे ही जैसे हैं? आदि जिज्ञासा ही मनुष्य को नित्य प्रति उद्वेलित करती रही है। हमारे सौर-परिवार में पृथ्वी के अतिरिक्त जीवन सम्भव नहीं है।

□□□

विभिन्न मात्रक

प्रकाश वर्ष	=	9.4607×10^{12} किमी
	=	5.8786×1012 मील
पारसेक	=	3.2616 प्रकाश वर्ष
	=	19.174×10^{12} मील
	=	30.857×10^{12} किमी
ऐंग्सट्राम (A)	=	10^{-10} मीटर = 0.000000001 मी.
	=	10-7 किमी = 0.000001 किमी
1½ मील	=	1.60935 किमी
1 योजन	=	8 मील (लगभग)
1 फीट	=	0.3048 मीटर
1 इन्च	=	2.54 सेमी
1 पौंड	=	0.4536 किग्रा (किलोग्राम)

समय की प्राचीन भारतीय माप

1 त्रुटि = $\frac{1}{3240000}$ सेकेंड

6 त्रुटि = 1 तत्पर = $\frac{1}{540000}$ सेकेंड

60 तत्परस = 1 पर = $\frac{1}{9000}$ सेकेंड

60 परस = 1 प्रतिपल = $\frac{1}{150}$ सेकेंड

60 प्रतिपल = 1 विपल = $\frac{6}{5}$ सेकेंड

2½ विपल = 1 प्रतिविहोरा = 1 सेकेंड

60 प्रतिविहोरा = 1 विहोरा = 2½ पल = 60 सेकेंड = 1 मिनट

60 विहोरा = 1 होरा = 2½ घटी = 1 घंटा

24 होरा = 60 घटी = 1 अहोरात्र (दिन-रात, पृथ्वी का एक घूर्णन)

15 अहोरात्र = 1 पक्ष

2 पक्ष = 1 मास

2 मास = 1 ऋतु

3 ऋतु = 1 अयन

2 अयन = 1 वर्ष या दिव्य अहोरात्र (सूर्य के चारों ओर पृथ्वी का एक भ्रमण)

12000 दिव्य वर्ष = 1 दिव्य युग या महायुग या चतुर्युगी = 4.32×10^6 वर्ष

71 दिव्य युग = 1 मन्वन्तर = 3.0672×10^8 वर्ष

14 मन्वन्तर (15 संधि सहित) = 1 कल्प = 1000 दिव्य युग = 4.32×10^9 वर्ष

(1 संधि = 1728000 वर्ष)

2 कल्प = 1 ब्राह्म दिन (ब्राह्म अहोरात्र) = 8.64×10^9 वर्ष

360 ब्राह्म दिन = 1 ब्राह्म वर्ष = 3.1104×10^{12} वर्ष

50 ब्राह्म वर्ष = 1 परार्ध = 1.5552×10^{14} वर्ष

2 परार्ध = 1 ब्रह्मायु = 3.1104×10^{14} वर्ष

प्रमुख तारे

	नाम	पारिभाषिक नाम	तारामंडल	दूरी (प्रकाश वर्ष)	विवरण
1.	रिजिल केन्टारस	ऐल्फा सेंटारी A	सेंटारस	4.3	पीला वामन — तीन तारों का समूह
2.		ऐल्फा सेंटारी B	सेंटारस	4.3	पीला लाल वामन — तीन तारों का समूह
3.		ऐल्फा सेंटारी C (प्राक्सिमा सेंटारी)	सेंटारस	4.3	लाल वामन, सबसे निकट का तारा — तीन तारों का समूह
4.	बर्नार्ड तारा		ओफियूकस	5.9	लाल वामन
5.	सिरियस (लुब्धक या व्याध)	ऐल्फा कैनिस मेजारिस	कैनिस मेजर	8.7	युग्म तारा, आकाश में दिखाई देने वाला सबसे अधिक चमक का तारा, साथ का तारा श्वेत वामन
6.	एपसिलॉन एरिदानी	पूर्वोक्त	एरिदानस	10.7	पीला वामन
7.	61 सिग्नी	पूर्वोक्त	सिग्नस	11.2	युग्म तारा, प्रथम तारा जिसकी दूरी ज्ञात की गयी
8.	प्रोसिआन A	ऐल्फा कैनिस-माइनोरिस	कैनिस माइनर	11.4	पीला वामन — युग्म तार
9.	प्रोसिआन B		कैनिस माइनर	11.4	श्वेत वामन — युग्म तार
10.	एपसिलॉन इन्डी	पूर्वोक्त	इन्डस	11.4	पीला लाल वामन
11.	टाउ सेती	पूर्वोक्त	सीटस	11.9	पीला वामन
12.	वेगा (अभिजित)	ऐल्फा लाइरी	लाइरा	26	नीला श्वेत तारा
13.	पॉलक्स	बीटा जेमिनोरम	जेमिनी (मिथुन)	35	लाल दानव
14.	आर्क्टूरस (स्वाति)	ऐल्फा बुओटिस	बुओटीज	36	लाल दानव
15.	कास्टर	ऐल्फा जेमिनोरम	जेमिनी (मिथुन)	44	बहुतारा
16.	कैपेला (ब्रह्महृदय)	ऐल्फा औरिजी	औराइगा (प्रजापति)	45	युग्मतारा, पीला दानव
17.	अलदबरान	ऐल्फा टाराइ	टारस (वृष)	68.5	लाल दानव

(रोहिणी)				
18. अलगूल	बीटा पर्सिआई	पर्सियस	82	ग्रहणशील युग्म, साथ का तीसरा तारा रेडियो स्रोत
19. रेगुलस (मघा)	ऐल्फा लिओनिस	लिओ (सिंह)	84	नीला श्वेत तारा
20. माइज़र (वसिष्ठ)	एक्साई अर्सा मेजारिस	अर्सा मेजर (सप्तर्षि)	88	बहुतारा, सप्तर्षि मंडल के हैंडिल का मध्य तारा
21. कैनोपस (अगस्त्य)	ऐल्फा कारइनी	कारइना	110	पीला महादानव
22. स्पाइका (चित्रा)	ऐल्फा विर्जिनिस	वर्गो (कन्या)	260	नीला श्वेत तारा
23. पोलरिस (ध्रुवतारा)	ऐल्फा अर्सा माइनोरिस	अर्सा माइनर	300	युग्म तारा, पीला दानव सेफीड चरकांति तारा
24. एन्टरीज (ज्येष्ठा)	ऐल्फा स्कार्पिआई	स्कार्पिअस (वृश्चिक)	430	लाल महादानव, साथ का तारा रेडियो स्रोत
25. बीटेलजूज (आर्द्रा)	ऐल्फा ओरिआनिस	ओरायन (मृग)	650	लाल महादानव
26. माइरा	ओमीक्रान सीटाई	सीटस	920	लाल दानव, चरकांति तारा
27. राइजेल	बीटा ओरिआनिस	ओरायन (मृग)	850	बहुतारा, नीला श्वेत महादानव
28. डेनब	ऐल्फा सिग्नी	सिग्नस	1500	श्वेत महादानव, प्रथम पच्चीस चमकदार तारों में सबसे अधिक वास्तविक कांतिमान का तारा, दूर होने के कारण 19 वाँ चमकीला तारा

पारिभाषिक शब्द

अन्तरिक्ष	Space
अन्तरिक्ष विज्ञान	Space science
अन्तरिक्ष स्टेशन	Space station
अन्तरिक्ष यान	Space ship
अन्तरिक्ष शटल	space shuttle
अन्तरिक्ष रेखा	Space line
अन्तरिक्ष यात्री	Astronaut Cosmonaut
अन्तर्ग्रहीय अन्तरिक्ष	Interplanetary Space
गुण-भार	Molecular weight
अर्ध-चालक	Semi conductor
अर्द्ध-प्रधान-अक्ष	Semi major axis
अतिपरवलयाकार	Hyperbolic
अनियमित	Irregular
अनुकूलन	Adaptation
अवरक्त किरणें	Infra red rays
अपसौर (अधिकतम दूरी पर)	Aphelion
अपकेन्द्र बल	Centrifugal force
अरब	Billion
अक्ष	Axis
आकाशगंगा	Milky way
आकाशगंगा (अन्य)	Galaxy
आकाशीय पिंड	Heavenly bodies

आक्सीकारक	Oxidiser
आर्द्रता	Humidity
आनुवंशिकता	Heredity
आपेक्षिक, सापेक्ष	Relative
आपेक्षिकता सिद्धान्त	Theory of relativity
आवर्तकाल	Periodic time
आवेशित, आवेशयुक्त	Charged
आयनीकृत, आयनित	Ionised
आयनमंडल,	Ionosphere
आयन इंजन	Ion Engine
इलेक्ट्रान	Electron
उड़ान पथ	Flight trajectory
उड़न अड्डा	Cosmodrome
उत्थापक बल	Lifting force
उत्प्रेरक	Catalyst
उत्केन्द्रता	Eccentricity
उत्सर्जन अंग	Excretory organ
उपसौर	Perihelion
उपग्रह	Satellite
उल्का	Meteor
उल्काभ	Meteoroid
उल्का पिंड	Meteorite
ऊर्जा	Energy
ऐल्फा सेंटारी	Alpha centauri
ऐक्स किरणें	X-rays
ऐन्टेना	Antenna
ऐन्ड्रोमिडा	Andromeda
कक्षा	Orbit
कोणी संवेग	Angular momentum

क्रांतिवृत्त	Ecliplic
क्षितिज	Horizan
खगोल	Sky
खगोलीय	Astronomical
कक्षा-वेग, कक्षीय वेग	Orbital velocity
कक्षागत	orbital, In the orbit
क्वथनांक	Boiling point
क्वासर	Quasar
काला विवर	Black hole
काला वामन	Black dwarf
कास्मिक किरणें	Cosmic rays
कांतिमान	Magnitude
क्रेटर	Crater
कैलोरी	Calorie
कैलिस्टो	Callisto
क्रोड	Core
खगोल	विज्ञान Astronomy
गजित ऊजा	Kinetic energy
ग्रहणशील युग्मतारा	Eclipsing binary
ग्रह	Planet
गुरुत्वाकर्षण बल	Gravitational force
गुरुत्व केन्द्र	Centre of gravity
गुरुत्वीय त्वरण	Acceleration due to gravity
घूर्णन	Spinning
चरकांति तारा	Variable star
चरवाहे उपग्रह	Shepherding satellites
चन्द्र	Moon
चन्द्र आच्छादन	Lunar Occultation
ट्राइटन	Triton

टार्डिन	Tardyon
टीटन	Titan
दूरमापन	Telemetering
अन्वेषी यान	Probe
टोहक केन्द्र	Tracking station
ट्रोपोस्फियर	Troposphere
तरंग-दैर्घ्य	Wave length
तारामंडल	Constellation
द्रव्यमान अनुपात	Mass ratio
द्रवणांक	Melting point
दाब, दबाव	Pressure
दाब पंख	Pressure vane
दीर्घवृत्त	Ellipse
दीर्घवृत्ताकार	Elliptical
दूरबीन, दूरदर्शक	Telescope
ध्रुवीय प्रकाश	Aurora
ध्रुवान्तर रेखा	Radius vector
धूमकेतु	Comet
नाभिक	Nucleus
नाभिकीय विखंडन	Nuclear fission
नाभिकीय प्रक्रिया	Nuclear reaction
नाभि	Focur (of an ellipse)
निरपेक्ष	Absolute
निर्वात	Vacuum
नीहारिका	Nebula
निष्क्रमण वेग	Exhaust velocity
नीला दानव	Blue giany
न्यूट्रान	Neutron
न्यूट्रान तारा	Neutron star

नेप्ट्यून	Neptune
परमाण्विक	Atomic
परवलयाकार	Parabolic
परिधि	Circumference
परिमित	Finite
पल्सर	Pulsar
पलायन	Escape
पलायन वेग	Escape velocity
प्लाज्मा	Plasma
पीला वामन	Yellow dwarf
प्लूटो	Pluto
पृथ्वी परिक्रमी कक्षा	Orbit around the earth
पृष्ठभूमिक विकिरण	Background radiation
प्रकाश संश्लेषण	Photosynthesis
प्रतिरोधक	Resistant
प्राक्षेपिक मार्ग	Ballistic path
प्राक्सिमा सेंटारी	Proxima centauri
प्रेषण	Transmission
प्रेक्षण	Observation
प्रोपेलेन्ट, नोदक	Propellant
प्रोटान	Proton
फोटान	Photon
फौसिल, जीवाश्म	Fossil
ब्रह्मांड, विश्व	Cosmos, universe
बहुतारा	Multiple star
बुध	Mercury
बृहस्पति	Jupiter
भारहीनता	Weightlessness
भारीपन	Gravity, Opposite to weightlessness

भूभौतिकी	Geophysics
मीमास	Mimas
मैगलन के बादल	Magellanic clouds
मंगल	Mars
युग्मतारा	Binary star
यूरोपा	Europa
यूरेनस	Uranus
राकेट	Rocket
राडार	Radar
रेडियो तरंगे	Radio waves
रेडियो नीहारिका	Radio astronomy
लघु तरंगदैर्घ्य	Short wave length
लाल दानव	Red giant
लाल महादानव	Red supergiant
लाल वामन	Red dwarf
वलय	Ring
वाष्पोत्सर्जन	Transpiration
वायुपोत	Air ship
विस्फोट सिद्धांत	Big bang theory
विच्छेदन	Decomposition
विषुवतरेखीय धरातल	Equatorial plane
विद्युत चुम्बकीय तरंगें	Electro magnetic waves
वेग	Velocity
वेधशाला	Observatory
शनि	Saturn
शुक्र	Venus
श्वेत वामन	White dwarf
शंकु	Cone
सर्पिल	Spiral

सहज क्रियाएँ	Reflexes
स्पर्श-रेखा	Tangent
स्थानीय समूह	Local group
स्थिर कक्षा, तुल्यकालिक कक्षा	Synchronous orbit
स्थिर अवस्था सिद्धांत	Steady state theory
सुदूर	Remote
सूपरनोवा	Supernove
सूर्य कलंक	Sun spots
स्ट्रैटोस्फियर	Stratosphere
सौर-परिवार	Solar system
सौर-संचालन	Solar sailing
सौर-लपटें	Solar flares
संश्लेषण	Synthesis
संसूचक	Detector
संवेग	Momentum
संयोजन	Docking
संचय	Storage
संचार	Communication
संघनन	Condensation
संघनित	Condensed
संवहन धाराएँ	Convection currents
हिमांक	Freezing point
क्षुद्र ग्रह	Asteroid
त्रिज्या	Radius

•••